

# सत्योपारव्यानम्



सम्पादकः

डॉ. शैलजा पाण्डेयः

# सत्योपाख्यानम्



सत्पादकः  
दॉ. शैलजा पाण्डेयः

४

**Ganganatha Jha Campus Text Series No. 56**

**General Editor**  
**Dr. Prakash Pandey**

# **Satyopākhyānam**

**Edited by**  
**Dr. Shailaja Pandey**



**Rashtriya Sanskrit Sansthan**  
**Ganganatha Jha Campus**  
**Chandrashekhar Azad Park**  
**Allahabad - 211 002**

**2011**

**Published by : Principal**  
Rashtriya Sanskrit Sansthan  
**Ganganatha Jha Campus**  
Chandrashekhar Azad Park  
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

©

**Publisher**

**First Edition : 2011**

**Price :**



**Printed At :**  
**Academy Press**  
**Allahabad**

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला प्रसूनम् - 56

प्रधानसम्पादकः

डॉ. प्रकाशपाण्डेयः

# सत्योपाख्यानम्

सम्पादकः

डॉ. शैलजापाण्डेयः

राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसर

आजादोद्यानम्, इलाहाबादः 211002

2011

**प्रकाशकः प्राचार्यः**  
**राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्**  
**( मानित-विश्वविद्यालयः )**  
**गङ्गानाथज्ञा-परिसरः,**  
**इलाहाबादः -2**

**संस्करणम् प्रथम**

© **प्रकाशकः**

**प्रकाशनवर्षम् – 2011**

**मूल्यम् :**

**पृष्ठविन्यासकारः**  
**ब्रह्मानन्दमिश्रः**

**मुद्रणम्**

**एकेडमी प्रेस**  
**दारागंज, इलाहाबाद**

## आमुखम्

३० नमश्चण्डकायै

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेति तत्त्वतः।  
त्यज्ज्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

श्रीमद्भगवद्गीता ४.९

अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में प्रादुर्भाव होना अवतार कहलाता है। यह अवतार परम अलौकिक और रहस्यमय है। इसलिए भगवान् ने उपर्युक्त श्लोक में कहा है कि, भगवान् के अवतरित होने के दिव्य रहस्य को जो जानते हैं वे भगवान् को प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् सभी प्राणियों पर अहैतुकी दया करते हुए संसार के परम हित के लिए अवतार लेते हैं। श्रीमद्भगवत में श्री ब्रह्माजी के कथन का एक प्रसङ्ग है कि –

सुरेषु ऋषिष्वीश तथैव नृष्टपि तिर्यक्षु यादस्त्वपि तेऽजनस्य।

जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च।।

को वेति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्थवतस्त्रिलोक्याम्।

क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्।।

श्रीमद्भगवत १०,१४,२०,११

देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् और वैसे ही जलचरादि योनियों में अजन्मा भगवान् का जन्म असत् पुरुषों के मद का मंथन और सत् पुरुषों पर कृपा करने के लिए ही होता है। भगवान् सर्वव्यापक परमात्मा और योगेश्वर हैं। जिस समय वे अपनी योगमाया का विस्तार कर क्रीडा करते हैं उस समय त्रिलोकी में कौन जान सकता है कि उनकी लीला कहाँ, किस प्रकार, कितनी और कब होती है?

गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है कि–

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।  
 अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्पानं सृजाम्यहम्॥।  
 परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।  
 धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥।

श्रीमद्भागवद्गीता ४,६-८

अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी और समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन कर अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ। जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने रूप को रचता हूँ, साकार रूप में प्रकट होता हूँ। साधु जनों का उद्घार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की संस्थापना के लिए प्रत्येक युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

यद्यपि उपरि वर्णित सभी कार्य विना अवतार लिए भी भगवान् कर सकते हैं फिर भी लोगों पर विशेष दया करके अपने दर्शन, स्पर्श और भाषण आदि के द्वारा सुगमता से उन्हें उद्घार का सुअवसर देने के लिए और अपने भक्तों को अपनी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कराने के लिए इस भूलोक में साकार रूप से प्रकट होते हैं। इन अवतारों में धारण किए गए रूप, गुण, प्रभाव, नाम, माहात्म्य और दिव्य कर्मों का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके सभी लोग सहज़ा ही संसार सागर से पार हो जाते हैं। यह विना अवतार के संभव नहीं है इसलिए भगवान् अवतार लेते हैं। अवतार लेने पर भगवान् एक क्षेत्र विशेष में सीमित नहीं रहते हैं। निराकार रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं और अग्नि के सदृश चक्रमक पत्थर या दिव्या सलाई आदि के माध्यम से जहाँ चाहें प्रकट किया जा सकता है। जिस समय एक स्थान में अग्नि को प्रकट किया जाता है उस समय अन्यत्र अग्नि का अभाव नहीं होता है। एककालावच्छेदेन अनेक स्थानों पर प्रकट किया जा सकता है। जहाँ भी अग्नि प्रकट होती है उसमें पूर्ण शक्ति रहती है। एक साथ अलग-अलग स्थान पर प्रकट होने के कारण दाहकता में कमी नहीं आती है। भगवान् के अवतार में भी वही स्थिति होती है। भगवान् निराकार रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं। एक साथ अनेक स्थानों पर प्रकट हो सकते हैं। श्रीमद्भागवत में एक प्रसङ्ग आता है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण मिथिला गए। वहाँ के राजा बहुलाश्व उनके अनन्य भक्त थे। वहीं श्रुतदेव नामक एक ब्राह्मण भी भगवान् का अनन्य भक्त था। दोनों ने एक ही समय अपने-अपने घर में पधारने के लिए भगवान् से प्रार्थना की। दोनों ही उपर्युपरि भक्त थे। दोनों में से किसी के भी मन को भगवान् तोड़ना नहीं चाहते थे। इसलिए दोनों में से किसी को भी न जनाते हुए एक साथ दो रूप धारण कर एक कालावच्छेदेन दोनों के घर जाकर दोनों को ही कृतार्थ किया। यथा-

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्ष्या।  
उभयोराचिशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः॥

श्रीमद्भागवत १०,८६,२६

इस प्रकार अनेक प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत में आते हैं। (श्रीमद्भागवत १०,६९,१३-४३)

भगवान् श्रीराम के विषय में भी इस प्रकार का वर्णन आता है। लंका विजय के पश्चात् जब भगवान् श्री राम अयोध्या लौटे, उस समय अयोध्या का हर प्राणी उनके दर्शन के लिए आतुर था। इसलिए उन्होंने उस समय असंख्य रूप धारण कर लिए और पल भर में सभी से मिल लिए। यथा—

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥

छन महि सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥

रामचरितमानस उत्तर. ६/४,५,७

भर्त्यलोक में अवतार लेने पर भी उनका शरीर पाञ्चभौतिक या मायिक नहीं होता है और न ही कर्म से प्रेरित होता है। ये स्वयं ही गीता में कहते हैं—

न मां कर्माणि लिप्यन्ति न मे कर्मफले स्युहा।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(गीता ४,१४)

भगवान् का अवतार मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन आदि के रूप में भी हुआ है। इनके अतिरिक्त भगवान् का एक और अवतार होता है। इसे अर्चावितार कहते हैं। पूजा के लिए भगवान् की धातु, पाषाण, मृत्तिका आदि से प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं। वे भगवान् की अर्चाविग्रह कहलाती हैं। कभी-कभी उपासक के प्रेमबल और निष्ठा से मूर्तियाँ चेतन हो जाती हैं। चलने-फिरने लगती हैं। हँसने बोलने लगती हैं। इन अर्चाविग्रहों में भगवान् की शक्ति के उत्तर आने को अर्चावितार कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ सत्योपाख्यान में रामावितार का वैशिष्ट्य, भगवान् राम को विष्णु का अवतार, लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार और भरत और शत्रुघ्न को शंख एवं चक्र का अवतार माना गया है। मन्थरा के पूर्वजन्म का वृत्तान्त और विष्णु से जन्मजात वैर भी ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य प्रतीत होता है। दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में नारद और देवयोगिनी की भूमिका का वर्णन भी इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

गङ्गानाथ ज्ञा परिसर की सहायक आचार्या डा० शैलजा पाण्डेय द्वारा इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन से न केवल मातृका का प्रकाशन हुआ है अपितु साङ्ग, सायुध, सवाहन भगवान् श्री राम कथा के अध्ययन, मनन और चिन्तन से आम पाठक को पारलैकिक सुख की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। अतः डा० श्रीमती शैलजा पाण्डेय जी को धन्यवाद और वर्धापन।

प्रो० सर्वनारायण ज्ञा  
प्राचार्य (का०)

□ □

## प्ररोचना

### सत्योपाख्यान : एक परिचय

यह ग्रन्थ राम कथा साहित्य की अमूल्य निधि है। राम-कथा परक इस ग्रन्थ का नाम सत्योपाख्यान है – अर्थात् सत्य अथवा सत्या का उपाख्यान। इस ग्रन्थ में सत्य शब्द का प्रयोग श्रीराम के लिए अत्यल्प है किन्तु सत्या शब्द का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है। यहाँ सत्या शब्द के दो अर्थ प्राप्त होते हैं—अयोध्या एवं सीता। ग्रन्थ में अयोध्या नगरी परक अर्थ का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है। सत्या अयोध्या नगरी का ही एक अभिधान है। तीनों अर्थ इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

#### १. सत्या, अयोध्या—

यह भगवान् विष्णु की आदि पुरी है—

विष्णोराद्या पुरी सत्या तस्या माहात्म्यमीदृशम्।

—अ. ३४।२२

इस पुरी के समुख पापी टिक नहीं पाते। उनके समुख आते ही यह पुरी अपनी गदा से उन्हें मारती है—

उद्यतायुद्धद्वोर्दण्डः सत्यायाः समुखं गताः।

अयोध्यापि महाकीर्या यथा नाम तथा गुणाः॥

ताडितायोध्यया सर्वे गदया भीमवेगया।

पलायनपराः सर्वे पुरस्तस्या न तस्थिरे॥

३४।१४।१५

लोक एवं वेद में प्रसिद्ध अयोध्या पुरी सत्या के साथ-साथ विमला नाम से भी जानी जाती है—

सत्या च विमला चैव पुरी चाद्या प्रकीर्तिंता।

अयोध्या नाम विख्याता वेदे लोके तथैव च॥।७९।३

## २. सत्या, सीता—

इस ग्रन्थ में सत्या शब्द का दूसरा अर्थ सीता दिया गया है। ग्राम-वधुओं ने अयोनिजा सीता को सत्या एवं इन्द्रा (लक्ष्मी स्वरूपा) माना है—

सत्यामयोनिजां सीतामिन्द्रिरां भेनिरे स्त्रियः। —७२।१६

## ३. सत्य, श्रीराम—

भगवान् श्रीराम स्वयं नारायण एवं परब्रह्म हैं। यह चित्, सत्य एवं आनन्द स्वरूप हैं एवं योगीगण इन्हीं में अपना मन रमाते हैं। इनके इस सत्यस्वरूप का उल्लेख ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर किया गया है। ग्रन्थ के मङ्गलान्त में इनकी स्तुति करते हुये कहा गया है—

एवं ध्यायेत् सदा रामं जानकीपतिमव्ययम्।

रमते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि॥

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। —७९।२।३

यद्यपि पूरे ग्रन्थ में सत्य रूप श्री राम का वर्णन है किन्तु ग्रन्थ में सत्या शब्द का प्रयोग अयोध्या के अर्थ में अधिक प्राप्त होता है। समग्र राम-कथा भी अयोध्या पुरी के चतुर्दिक् ग्रथित है अतः सत्योपाख्यान अयोध्या पुरी की कथा अधिक प्रतीत होती है। अयोध्या की संज्ञा सत्या सम्बवतः इसलिये है क्योंकि यह सच्चिदानन्द रूप श्री विष्णु की आदि-पुरी है एवं यहाँ उनका सर्वदा वास रहता है। सत्य (श्री विष्णु) को सदैव धारण करने के कारण यह पुरी सत्या है। श्री विष्णु की शक्ति के रूप में लक्ष्मी ही सीता के रूप में अवतरित हैं, अतः सीता को भी सत्य-रूप श्री राम की शक्ति सत्या कहा गया है।

**सत्योपाख्यान में राम-कथा के कर्तिपय प्रमुख पात्र**

**राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नि**

सत्योपाख्यान की कथा में भगवान् श्रीराम आदि चारों भाइयों को शेषशायी, शङ्ख एवं चक्रधारी नारायण का चार रूपों में विभक्त होना दिखाया गया है। यह अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है।(श्री नारायण के इस स्वरूप का वर्णन अगस्त्य संहिता, ३/९-१०, सम्पा. पं. भवनाथ ज्ञा, महावीर मन्दिर प्रकाशन, पटना, २००९में भी किया गया है।) भगवान् राम साक्षात् नारायण तथा लक्ष्मण रजत विग्रह वाले, सहस्र शिरों वाले शोष हैं जो सदैव नारायण की सेवा में तत्पर रहते हैं। भरत शंख के अवतार हैं एवं चक्र शत्रुघ्नि हैं। भगवान् विष्णु के रामावतार एवं शेष के लक्ष्मणावतार का वर्णन सर्वत्र प्राप्त होता है किन्तु भरत

एवं शत्रुघ्न के शंख एवं चक्र होने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। इस तथ्य का वर्णन सत्योपारख्यान में कई स्थानों पर है।

इस ग्रन्थ में प्रथमतः द्वितीय अध्याय में इसका उल्लेख है। महर्षि वशिष्ठ से कौशल्या आदि रानियाँ कभी-कभी आने वाले स्वन का उल्लेख करती हैं। कौशल्या कहती हैं कि उन्हें अपना पुत्र अत्यन्त तेजस्वी, शंख एवं चक्र से युक्त गरुड़ पर विराजमान दिखाई पड़ता है—

कदाचित् रामं पश्यामि स्वजे परमभास्वरम्।  
गरुडोपरि राजन्तं शङ्खचक्रधरं सुतम्।

—२।२,३

इस प्रकार सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को सहस्रशिर वाले रजत शरीर से युक्त देखती हैं—

यमापि शृणु विप्रर्वें स्वजे पश्यामि लक्ष्मणम्।  
सहस्रशिरसं नागं रजतस्यैव विग्रहम्।

—२,३,४

कैकयी को अपने पुत्र भरत शंख रूप में स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं—

अहं पश्यामि मो विप्र भरतं शङ्खरूपिणम्। —२।५

अन्य प्रसंग में सीता अपनी सखी से श्री विष्णु के रामावतार की चर्चा करते हुये कहती हैं कि नारायण भूमि के भार का हरण करने के लिये एवं रावण वध के लिये श्रीराम का अवतार लेंगे। उनके साथ शेष, शंख एवं सुदर्शन चक्र भी दशरथ के गृह में अयोध्या में अवतरित होंगे—

अयं मम पतिः श्रीमान् शेषेन चैव शङ्खेन च।  
सुदर्शनेन त्वयोध्यायां गृहे दशरथस्य च॥।

अ. ५०।३६,३७

तीसरा प्रसंग राम-सीता विवाह के समय प्राप्त होता है। सीता की शारदा नामक सखी ने श्रीरामादि के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया था। उसने हास-परिहास करते हुये श्रीराम से कहा कि आप नारायण, लक्ष्मण शेष, भरत शंख एवं शत्रुघ्न चक्र के रूप में मुझे दिखाई पड़ रहे हैं—

भवान्नारायणो देवो श्यामसुन्दरविग्रहः।  
लक्ष्मणः शेषरूपश्च भरतः शङ्खमूर्तिभृत्॥।

शत्रुहा चक्ररूपश्च मया हयेवं विलोकिताः।

-६१।२५,२६

इस प्रकार श्रीराम अपने तीनों भाइयों समेत शंख, चक्र एवं शेषनाग से युक्त भगवान् नारायण के अवतार कहे गये हैं, जिन्होंने धरा-धाम के कष्ट के निवारण हेतु अयोध्या पुरी में राजा दशरथ के घर अवतार लिया था।

इस कथा में विशिष्ट तथ्य भरत का शंख होना एवं शत्रुघ्न का सुदर्शन चक्र होना है। लक्ष्मण के रूप में शेषावतार एवं श्री राम के रूप में भगवान् विष्णु का अवतार अन्य राम कथाओं में भी परिलक्षित होता है।

**सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतकीर्ति-**

सीता को नारायण की शक्ति लक्ष्मी का, उर्मिला को शेषनाग की शैषी शक्ति का, माण्डवी को पाञ्चजन शंख की शक्ति तथा श्रुतकीर्ति को सुदर्शन की शक्ति का अवतार कहा गया है। सीता की सखियाँ अणिमा आदि विभूतियाँ हैं। सीता इस रहस्य को अपनी सखी वासन्तिका के समक्ष प्रस्तुत करती हैं—

अहं कन्या भविष्यामि जनकस्य महीतलात्।

शैषी शक्तिरुर्मिला च जनकस्यैव हयौरसी॥

पत्नी पाञ्चजनस्यापि माण्डवीति प्रकीर्तिर्ता।

श्रुतकीर्तिः तु चक्रस्य कुशध्वज सुते इमे॥।

उत्पत्त्येते महाभागे विमले प्रस्तुते जनैः।

भविष्यन्ति च मे सख्यो अणिमाद्याः विभूतयः॥।

-५०। ३८,४०

**शान्ता-**

शान्ता को श्रीराम की बहन एवं मुनि शार्दूल शृष्टि शृङ्ख की पत्नी कहा गया है। इन्होंने अपने आश्रम में श्रीराम का तीनों भाइयों समेत एवं उनके सैनिकों सहित स्वागत किया था—

शान्तापि भगिनी तस्य रामस्य परमात्मनः।

पाद्यं अर्ध्यं विधायाथ चक्रे नीराजनं ततः॥।

-४९। ३८

**लक्ष्मीनिधि एवं सिद्धि-**

लक्ष्मीनिधि राजा जनक के पुत्र एवं सीता के भाई हैं। इन्होंने सीता के विवाह

के अवसर पर श्रीराम सहित तीनों भाईयों एवं राजा दशरथ का स्वागत किया था। वर रूप में द्वार पर उपस्थित चारों भाईयों एवं राजा दशरथ को सम्मान देने के लिये गज के उत्तरते समय हाथ पकड़ कर नीचे उतारा था—

जनकस्य च पुत्रो वै नामा लक्ष्मीनिधिर्महान्।  
हस्तावलम्बनं दत्त्वा गजाद्राममरोपयत्।  
तथैवान्यान् कुमारान् वै तथा दशरथं नृपम्॥

—६०। १०-११

सिद्धि लक्ष्मीनिधि की पत्ती थी एवं राजा जनक की पुत्रवधू थी—

तासां यथ्यात् समुत्थाय राज्ञी लक्ष्मीनिधेस्तुत्या।  
नामा सिद्धिस्तु सा ख्याता सखी यस्यास्ति शारदा।  
वधू जनकराजस्य प्रिया लक्ष्मीनिधेः शुभा॥

—६१। ५-६

श्रीरामादि के साथ विवाह के अवसर पर इनका हास-परिहास प्राप्त होता है।

इनके अतिरिक्त राम-कथा में राजा दशरथ, उनकी पत्नियाँ कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा, राजा जनक, उनकी पत्ती एवं राजा जनक के भाई कुशभ्वज आदि का वर्णन कई स्थानों पर प्राप्त होता है।

### मन्थरा

यद्यपि मन्थरा का चरित्र सभी रामकथाओं में प्राप्त होता है किन्तु उसका जितना विशद वर्णन इस कथा में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र परिलक्षित नहीं होता। मन्थरा के पूर्व जन्म का वृतान्त एवं श्री राम से उसका विरोध अत्यन्त विस्तार से वर्णित है एवं यह इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य भी है। मन्थरा का परिचय ग्रन्थ में इस प्रकार प्राप्त होता है—

### दैत्य-कन्या—

मन्थरा दैत्य-वंश में उत्पन्न थी। उसके पीठ पर कूबर था एवं श्रीराम को वह कूर-दृष्टि से देखती थी। कैकेयी के अनुसार उसके पाप-समूह हीं उसकी पीठ पर कूबर बनकर स्थित थे—

इदं पापसमूहं ते स्थगुरुपेण वर्तते।  
पृष्ठोपरि महापापे श्रीरामे कूरदर्शिनी॥

—८। ३२,३३

यह पूर्व-जन्म में दैत्य राज विरोचन की पुत्री तथा प्रह्लाद की पौत्री थी—

नामा विरोचनो दैत्यो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।

तस्येयं मन्थरा कन्या पूर्वजन्मनि नागराः॥

—१०। ६

भगवान् विष्णु से युद्ध करते हुये, उनके प्रति मन में विरोध भाव रखते हुये उसकी मृत्यु हुई थी। अगले जन्म में वह कश्मीर देश में उत्पन्न हुई एवं कैकेयी के साथ उसकी प्रगाढ़-प्रीति थी। इसी से कैकय-नरेश ने विवाह के समय उसे भी कैकेयी के साथ राजा दशरथ के यहाँ भेज दिया था।

### विष्णु से विरोध—

मन्थरा के पिता विरोचन अत्यन्त धर्मात्मा प्रतापी तथा ब्राह्मणों का सत्कार करने वाले थे। उन्होंने अपने प्रताप से देवों का राज्य प्राप्त कर लिया था। देवों ने पुनः अपने राज्य की प्राप्ति के लिये गुरु बृहस्पति से उपाय पूछा। देव-गुरु बृहस्पति ने देवों को ब्राह्मण बनकर विरोचन से उसकी आयु को माँगने का प्रस्ताव दिया। ब्राह्मण-वेष में उपस्थित देवों को यद्यपि विरोचन ने पहचान लिया था किन्तु ब्राह्मणस्वरूप का सम्मान करते हुये उनकी पूजा की एवं उनका अभिप्राय पूछा। उन्होंने अपनी याचना विरोचन के सम्मुख रखी। दैत्य विरोचन ने हँसते हुये अपने प्राणों का त्याग कर दिया। उसके इस त्याग पर स्वर्ग से उसके मृत-देह पर पुष्ट-वृष्टि हुये। देव-गण तो अपना राज्य पाकर प्रसन्न हुये किन्तु दैत्यों में शोक छा गया।

इसके पश्चात् असुर-कर्म में निपुण विरोचन की पुत्री मन्थरा दैत्यों की रक्षा के लिये उठ खड़ी हुई। वह मय, शम्बर, बाण एवं बलि आदि दैत्यों के साथ देवों के विनाश के लिये युद्ध में प्रवृत्त हो गयी। दोनों पक्षों में तुमुल संग्राम हुआ। प्रथमतः देवों की पराजय हुई किन्तु बाद में नारायण की प्रेरणा से इन्द्र ने मन्थरा के मस्तक पर वज्र से प्रहार किया। इससे मन्थरा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। सभी दैत्य युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हुये। इन्द्र के प्रहार से उसका सिर, ग्रीवा एवं कटि-भाग भग्न हो गया तथा पीठ पर कूबर निकल आया। उसने रोते हुये इन्द्र को प्रेरित करने वाले विष्णु के प्रति मन में वैर पाल लिया तथा रोती-कलपती मन्थरा की मृत्यु हो गयी।

यही सत्योपाख्यान की खलनायिका भी है।

### देवयोगिनी

देव-योगिनी का वर्णन अन्य राम-कथाओं में नहीं प्राप्त होता है। यह इस ग्रन्थकार की उद्भावना है। दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में इसकी महती भूमिका रही

है। यह मोहिनी-विद्या की जाता थी।

एकबार महर्षि नारद अयोध्या पहुँचे। उन्होंने राजा दशरथ के सम्मुख कैकेयी का वर्णन करते हुये कहा कि इस कन्या के हाथ में स्थित रेखाओं से ज्ञात होता है कि उसका पुत्र यशस्वी, परम ज्ञानी एवं तपस्वी होगा। यह कन्या अतीव सुन्दरी है, अतः आपको उससे विवाह करना चाहिये। राजा अभी कैकेयी से किस प्रकार विवाह हो, इस विषय में चिन्तन कर ही रहे थे कि देवयोगिनी उनके समीप पहुँच गयी। उसने राजा दशरथ से चिन्ता का कारण पूछा। राजा ने सम्पूर्ण वृत्तान्त बताते हुये कहा कि यदि मैं अपना दूत कैकय नरेश के पास भेजूँ तो यह उपहास का कारण बनेगा।

इस पर योगिनी ने उन्हें सहयोग करने का वचन दिया और कहा, कि वह कैकेयी को मोहित करके विवाह करने के लिये नहीं, बल्कि स्वयं उसे स्वेच्छा विवाह करने के लिये प्रेरित करेगी। इसके पश्चात् वह कैकयपत्न नगर पहुँची। वहाँ एक निर्मल झरोवर के पास निवास बनाकर तापसी वेष धारण कर स्थित हो गयी। वहाँ लोग प्रायः स्नान के लिये आते थे। वहाँ कैकेयी भी स्नान के लिये पहुँची। तापसी से कैकेयी की भेट हुई। उसने कैकेयी को राजपती होने का फल-कथन किया। इसके पश्चात् मोहिनी देव-योगिनी का कैकय नरेश के गृह में प्रवेश हो गया। वहाँ कैकेयी को अपनी बातों से वशीभूत कर अयोध्या नरेश दशरथ का गुणगान किया एवं उसे अयोध्या नरेश में अनुरक्त किया। कैकेयी ने राजा दशरथ के प्रेम में वशीभूत होकर अन्न-जल का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् कैकेयी के माता-पिता को अपनी पुत्री के अनुराग का ज्ञान हुआ। अनेक तर्कों के पश्चात् तथा राज पुरोहित गर्ग के परामर्श के अनुसार कैकय-नरेश विवाह के लिये तैयार हुये।

विवाह की सारी पृष्ठभूमि तैयार हो जाने पर योगिनी ने राजा दशरथ को पूरा वृत्तान्त सुनाया। इस प्रकार देव-योगिनी के चरित्र की परिकल्पना ग्रन्थकार की अनूठी योजना है।

इस प्रकार ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में राम कथा के प्रसिद्ध पात्रों के साथ नवीन उद्भावनाओं को जोड़ा है, साथ ही नवीन पात्रों की भी कल्पना की है।

### तिथि एवं व्रत

सत्योपाख्यान चौंकि राम-कथा, परक ग्रन्थ है, अतः इसमें श्री राम से सम्बद्ध नवमीतिथि का माहात्म्य एवं व्रत तथा एकादशी तिथि का माहात्म्य एवं व्रत वर्णित है। इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

## नवमी

इस तिथि एवं व्रत का माहात्म्य ग्रन्थ के ३१ एवं ३२ वें अध्याय में किया गया है।

### राम जन्म एवं सीता जन्म—

चैत्र मास की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र रहने पर भगवान् श्री राम का जन्म हुआ था—

चैत्रे मासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।  
पुनर्वस्वर्क्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा॥

—३२ । ७

इस तिथि का दूसरा महत्त्व सीता के प्राकट्य से जुड़ा हुआ है। वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की पुष्य नक्षत्र से युक्त नवमी को मंगलवार के दिन भगवती सीता का भूमि से प्राकट्य हुआ था—

मासोन्तमे महापुण्ये वैशाखे माधवप्रिये।  
कुजवारे शुक्लपक्षे नवमी पुष्यसंयुता॥।  
पृथिव्या पूजनं कृत्वा जनकस्तु नरेश्वरः।  
हलेन कर्यणं चक्रे सर्वेषां पश्यतां सताम्॥।  
लाङ्गलस्य मुखाग्रात् रमाकन्या विनिर्गता।  
भित्वा क्षितितलं सद्यः सीतानाम्ना बभूव सा॥।

—५१। ४-६

इस ग्रन्थ में राम जन्म से जुड़ी चैत्र मास की नवमी का महत्त्व प्रतिपादित है। (इस ग्रन्थ का यह अध्याय अगस्त्य संहिता, अ.२८ में भी प्राप्त होता है।)

### रामनवमी व्रत—

चैत्र मास की नवमी को यदि पुनर्वसु नक्षत्र भी पड़े तो इस दिन श्रीराम को उद्देश्य कर तर्पण करने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस दिन व्रत एवं जागरण करना चाहिये। इस तिथि को भोजन करने से कुम्भीपाकनरक की प्राप्ति होती है। उस दिन पितृतर्पण तथा दान करने से पितरों को विष्णु पद की प्राप्ति होती है एवं थोड़ा भी दान महादान के तुल्य होता है। इस दिन तुला-पुरुष का दान भी विहित है। इस व्रत का पारण दशमी तिथि में ही किया जाना चाहिये।

इस तिथि को भगवान् श्रीराम के वशिष्ठ आदि ऋषियों से धिरे हुये एवं सीता

से संलाप करते हुये विग्रह का पूजन करना चाहिये तथा द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमः भगवते वासुदेवाय) का जप करना चाहिये। इसके पश्चात् अर्च, धूप एवं दीपादि से भगवान् श्रीराम का पूजन करना चाहिये। पुराण एवं वेदांदि का पाठ, नृत्य, गीत एवं वाद्य आदि के द्वारा रात्रि जागरण करते हुए रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। प्रातः काल स्नान, सावित्री मन्त्र का जप एवं सन्ध्या पूजन करना चाहिये।

इस तिथि के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये ग्रन्थ में पाँच पापियों की कथा दी गई है जिन्होंने अनजाने में नवमी तिथि को अयोध्या की यात्रा, नवमी व्रत एवं सरयू स्नान करके मुक्ति प्राप्त किया था।

### एकादशी

एकादशी तिथि के व्रत का विष्णु-भक्तों के मध्य अत्यधिक महत्त्व है। एक बार नारद ऋषि राजा दशरथ के ग्रह में उपस्थित हुये। उस दिन एकादशी तिथि थी। राजा ने उनसे फलाहार ग्रहण करने का अनुरोध किया। इस पर एकादशी व्रत का विधान मुनि ने कहा जो इस प्रकार है—

#### व्रत विधि—

एकादशी को फलाहार भी नहीं करना चाहिये। इस दिन फलाहार करना मध्यम व्रत की श्रेणी में आता है। इस दिन भोजन करना अतीव निन्दनीय होता है। कम से कम दो बार भोजन नहीं करना चाहिये। इस व्रत में दिन में हरि-कीर्तन एवं रात्रि में जागरण का विधान है।

#### अयोध्या एवं अयोध्या में स्थित तीर्थ

सत्योपाख्यान ग्रन्थ का वर्ण-विषय श्रीराम चन्द्र की कथा के साथ-साथ अयोध्या पुरी भी है। इसमें अयोध्या पुरी एवं उसके तीर्थों का विवेचन प्राप्त होता है। इस पुरी का धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है।

#### भौगोलिक स्थिति—

हिमालय एवं विन्ध्य पर्वत के मध्य देश में अयोध्या पुरी की स्थिति कही गयी है—

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये भूवैकुण्ठोऽपि दृश्यते।  
नामायोध्येति विख्याता ह्यजेया सकलैरपि॥

—१८। १४,१५

## पुरी की समृद्धि—

यह पुरी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं, सुवर्ण वस्त्र एवं दण्ड से युक्त पताकाओं, अश्व, गज एवं रथों से युक्त थी। यहाँ सरयू नदी प्रवाहित होती है। नदी के तट पर अनों के पर्वताकार ढेर लगे थे तथा जलपोत द्वारा वणिक् जनों का व्यापार होता था। यहाँ के बाजार (पण्यवीथि) मणियों से भरे थे। यहाँ के नर-नारी अत्यन्त सुन्दर तथा सुन्दर वस्त्रालंकरणों से युक्त थे। इस पुरी में भोग की सभी सामग्रियाँ एवं सुख के साधन सुलभ थे। यहाँ स्वर्गोपम सुख प्राप्त था। इस नगरी में अशोक वन, शान्तानिक वन, मन्दार वन जैसे अनेक उपवन, एवं आखेट योग्य वन थे। संक्षेप में, यह पुरी अन्न-धन से परिपूर्ण एवं अत्यंत समृद्ध थी।

## आध्यात्मिक स्वरूप—

अयोध्या नगरी आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध नगरी कही गयी है। इसमें पापी-जनों का प्रवेश निषिद्ध है। इसकी रक्षा में दश मूर्तिमान् दण्ड-धारी विद्व लगे रहते हैं। ये हैं—काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, मत्सर, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य एवं पैशुन (चुगलखोरी)—

अयोध्यायां तु ये विद्वा, मूर्तिमन्तस्तु ते सदा।

कामक्रोधश्च लोभश्च दम्भः स्तम्भोऽथ मत्सरः॥

निद्रा तन्द्रा तथालस्यं पैशुन्यमिति ते दश।

हस्ते दण्डं गृहीत्वा ताम्भूर्तिमन्तो विदुद्रवुः॥

—३३। २७,२८

यहाँ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को जाकर स्नान, दानादि का विशेष महत्व है।

अध्याय ३४ में अयोध्या की दैवी मूर्ति का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। यह तीर्थों से सेवित, शंख एवं चक्र धारण किये हुये तथा चक्र पर आरूढ़ सुन्दर मुख वाली है। इसे सत्या एवं विमला भी कहा गया है। इसके दर्शन से यम-दूत की बाधा नहीं होती है।

## अयोध्या के तीर्थ-स्थल—

अयोध्या के शिरोभाग में गोप्रतार तीर्थ है। यह सरयू तट पर है। सरयू तट पर ही यमस्थल, वाशिष्ठद्यु पुलिन है (अ. ३५)। इसके अतिरिक्त सहस्रधारा तीर्थ, पश्चिम में राजतीर्थ, इनके मध्य में पापमोचन तीर्थ, स्वर्ग द्वार (अ.-६७) सरयू के उत्तर में पार्वती सर (अ. ६८), मनोरमा नदी, उद्यालक ऋषि का यज्ञ स्थल (अ. ६९) देवखात

सरोवर, पञ्चाशवा तडाग, रामरेखा तीर्थ (अ. ७१) रमा तीर्थ (अ. ७३) एवं गुप्तहरि तीर्थ (अ. ७३, ७६) हैं।

## सरयू नदी

सरयू नदी की चर्चा के विना अयोध्या का वर्णन असम्भव है। इसके जल को 'ब्रह्मद्रव' कहा गया है—

**ब्रह्मद्रवे पुनश्चात्र रामः क्रीडां करिष्यति। —१८। ११**

ग्रन्थ के ३७ वें अध्याय में सरयू की उत्पत्ति का पूरा इतिहास प्राप्त होता है। यह भगवान् विष्णु के नेत्रों से उत्पन्न हुई है। इस नदी के कोख में श्रीराम अपने भाइयों समेत निवास करते हैं। पृथिवी पर इनका आगमन स्वायम्भूत मनु के काल में वशिष्ठ ऋषि द्वारा हुआ था।

## सरयू की उत्पत्ति—

इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु के आदेश से तपस्या की। ध्यानस्थ ब्रह्मा को भगवान् विष्णु का दर्शन हुआ। उन्होंने गरुड़ पर आरूढ़ भगवान् विष्णु का दर्शन एवं हाथों का स्पर्श प्राप्त किया। स्पर्श से सुखी होकर उन्होंने नेत्र खोल कर भगवान् दर्शन किया। भगवान् विष्णु के नेत्रों से जल गिरा, जिसे ब्रह्मा ने प्रेम पूर्वक ग्रहण कर अपने कमण्डलु में रख लिया एवं उसे ब्रह्म द्रव जान कर एक मानसरोवर के सदृश सरोवर बनाया। वहीं नारायण का न्यास कर जल को स्थापित किया। कालान्तर इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं ने वशिष्ठ ऋषि की आज्ञा से इस सरोवर को नदी का रूप दिया। इस कार्य में मञ्जुकेशी ने सहायता की। आगे-आगे वशिष्ठ ऋषि चलते गये एवं पीछे-पीछे सरयू नदी रूप में चलती गयी। इस प्रकार सरयू नदी अयोध्या पहुँची।

## स्तुतियाँ

सत्योपाख्यान ग्रन्थ में विविध देवों की अनेक स्तोत्र एवं स्तुतियाँ हैं। इस स्तुतियों की भाषा अत्यन्त सरल एवं भावपूर्ण है। इनमें प्रमुख स्तुतियाँ इस प्रकार हैं—

नारद द्वारा श्रीराम की स्तुति (२२। ११-२३), ब्रह्मा कृत गणेश-स्तुति (२३। १०-१४), कौशल्या तथा उनके साथ अन्य स्त्रियों द्वारा बालक राम की रक्षा हेतु पठित रक्षा स्तोत्र (२४। ५-१८), काक भुशुंड कृत बाल रूप राम की स्तुति (२६। ३२-५२, ६४-६७), यमराज कृत अयोध्या स्तुति (अष्टक) (३५। २९-३६), राजा दशरथ कृत सरयू स्तुति-अष्टक (३७। १-९), बिल्व संज्ञक गन्धर्व द्वारा की गई श्री राम स्तुति (४१। १५-२०), शंकर ब्राह्मण द्वारा कृत भरत स्तुति (४७। १८), देह से मुक्त देव कृत शत्रुघ्नि

स्तुति (४८। ५३-५५) तथा रमापाद ब्राह्मण कृत श्री सीता-स्तुति (७३। १०-२०)

ये सभी स्तुतियाँ अपने पाठ-फल के साथ उल्लिखित हैं।

### विभिन्न कथायें

ग्रन्थकार ने श्री राम के चरित्र, अयोध्या के महात्म्य तथा उससे सम्बद्ध तीर्थों के माहात्म्य के वर्णन हेतु विभिन्न कथाओं का उल्लेख किया है। कुछ प्रमुख कथायें इस प्रकार हैं।

मन्थरा वृत्तान्त (अ. १०-११), भुशुंड की कथा (२६), विश्वावसु की कथा (२७), रत्नकला की कथा (२९,३०), नवमी व्रत कथा (३१,३२), पाँच पापियों की कथा (३३,३४), सरयू उत्पत्ति की कथा (३७), महिष वध की कथा (४१), डिडिं किरात की कथा (४२), शंकर ब्राह्मण की कथा (४७), गज-देह के शाप से माहिष्मती के ब्राह्मण की मुक्ति की कथा (४८), अहल्योद्धार की कथा (५४), पञ्चाशवा तडाग की कथा (७१), एवं रमापाद ब्राह्मण की कथा (७३)

### निर्वचन एवं सूक्ष्मिकायाँ

#### निर्वचन—

ग्रन्थकार ने कथा एवं प्रसङ्गों की व्याख्या करते हुये अनेक शब्दों का निर्वचन एवं अर्थ स्पष्ट किया है। कठिपय पदों के निर्वचन द्रष्टव्य हैं—

#### अस्य बालकस्य—

ब्रह्मा ने गणेश से बालक राम की बाधा तथा कुदृष्टि से रक्षा हेतु कहा—‘रक्षां क्रियतामस्य बालकस्य’ (२३[१८]), गजानन ने ‘अस्य बालकस्य’ शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया। ‘अस्य’ पद की व्याख्या—

अकारो वासुदेव स्यात् षष्ठी हयस्य भवेद् भुवम्।

—२३। १९

तथा ‘बालक’ की व्याख्या एवं निर्वचन—

बालः केशः इति प्रोक्तः कशव्देन प्रजापतिः।

बाले बाले ककारस्तु जायते तस्य नित्यदा।

इति बालकशब्देन परब्रह्म विधियते।

बालकस्यास्य चार्थोऽयं मया ज्ञातः सुनिश्चितम्॥

—२३। २०-२१

‘अस्य’ पद में अकार वासुदेव तथा ‘स्य’ भुव है। ‘बालक’ पद ‘बाल’ का अर्थ

केश है एवं 'क' का अर्थ प्रजापति है। जिसके प्रत्येक बाल में सदा प्रजापति उत्पन्न होते हैं वह बालक है।

### विश्वावसु—

विश्वावसु संज्ञक गन्धर्व ने राजा दशदथ से अपने नाम का निर्वचन करते हुये कहा कि सभी प्रकार के स्वरों का धन ही जिसका गुण हो वह विश्वावसु है—

**विश्वरावधनं यस्य तस्माद् विश्वावसुस्वहम्॥**

—२७। २३

### अयोध्या—

अयोध्या शब्द की व्याख्या करते हुये इसका निर्वचन इस प्रकार प्राप्त होता है—

पार्यन् योध्यते यस्यास्तेनायोध्येति कथ्यते। —३७। ४

अर्थात् जिससे पाप-समूह युद्ध न कर सकें, वह अयोध्या है।

### निरञ्जन—

श्रीराम की ब्रह्म रूप में एक संज्ञा निरञ्जन है। होलिका के अवसर पर हास-परिहास करते हुये सीता की सखियाँ उन्हें काजल (अञ्जन) लगाने का प्रयत्न करती हैं। उस समय राम अपने मन में विचार करते हैं कि यदि ये मुझे काजल (अञ्जन) लगाने में सफल होती हैं तो मेरा नाम निरञ्जन के स्थान पर साञ्जन हो जायेगा—

**निरञ्जनं च मे नाम साञ्जनं तद् भविष्यति। —७७। १२**

### दशहरा—

ज्येष्ठ मास की दशमी तिथि को दशहरा भी कहा जाता है। जो दश पापों का हनन करे वह दशहरा है—

**दशहरा च साज्जेया दशपापानि हन्ति या। ७८। १**

### वाशिष्ठी

सरयू नदी की एक संज्ञा वाशिष्ठी भी है। स्वायंभू मनु के काल में वशिष्ठ ऋषि के द्वारा लाये जाने के कारण इन्हें वाशिष्ठी कहा गया है—

**वशिष्ठेन समानीता मनो स्वायंभूवै सति।**

**वाशिष्ठीति समाख्याता पुत्रा मे हृदये धृताः॥**

—३७। १९

## राम-

पर ब्रह्म के रूप में राम शब्द की व्याख्या करते हुये ग्रन्थकार ने सत्, चित् एवं आनन्द स्वरूप श्री राम का निर्वचन किया है कि इनमें योगी जन रमते हैं—

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि।

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। —७९। २३,२४

## सूक्ष्मिक्याँ-

ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर सूक्ष्मिक्याँ प्राप्त होती हैं जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—

१. सुकेशी श्यामनेत्राश्च श्यामाः श्यामेन वर्जिताः। —१९। २२

अयोध्या नगरी की स्त्रियाँ सुन्दर केशों वाली कृष्ण नेत्रों वाली स्त्रियाँ श्यामा (नायिका का भेद-विशेष) हैं, किन्तु उनमें श्यामत्व (चारित्रिक दोष) नहीं है।

२. निधिलाभाद् दरिद्रस्य तस्य प्रेम तु तत्र वै। —२८।३

राम के प्रति कौशल्या का प्रेम उसी प्रकार का जिस प्रकार दरिद्र को निधि प्राप्त हो जाय।

३. भाग्यात् भाग्यवतां भूतिः सर्वत्र किल जायते।—५९।१९

विश्वामित्र राजा दशरथ से श्रीरामादि के विवाह के प्रसंग में कहते हैं कि भाग्यवानों के अपने भाग्य से सभी स्थानों पर भूति (समृद्धि, अभ्युदय) प्राप्त होती है।

## सामुद्रिक शास्त्र

(अ१६)

सत्योपाख्यान में श्रीराम के बालरूप एवं शुभ-चिह्नों का वर्णन करते हुये सामुद्रिक शास्त्र का भी विवेचन किया गया है। प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं—अष्टमी के चन्द्रमा के समान ललाट, धनुषाकार भौंहें, खञ्जन पक्षी तथा मछली के समान नेत्र, शुक के समान नेत्र, सुन्दर गण्ड-स्थल, दिव्य कर्ण, अनार के बीज के समान दाँत, लाल ओष्ठ, चिवुक पर गर्त, कण्ठ पर तीन रेखायें, सुवर्ण के सदृश प्रकाशमान् नख, सुन्दर नाभि तथा ऊरु सघन एवं पीन थे।

उनके चरण कमल के सदृश थे। उनके पैरों में वज्र बिन्दु, ध्वज अमृतकुण्ड, वस्त्रांकुश, जम्बूफल, मत्स्य, इन्द्रधुनष, त्रिकोण, पद्म, यव, षट्कोण, शंख, चक्र एवं अष्टकोण तथा मूर्धा पर रेखा, घट एवं स्वस्तिक के तथा चन्द्र के चिह्न थे।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम के दिव्य चिह्नों के वर्णन से ग्रन्थकार के सामुद्रिक-शास्त्र परक ज्ञान का बोध होता है।

## नाट्यशास्त्र एवं नृत्यविद्या

श्रीराम-जानकी के विवाह के अवसर पर सीता की सखी वासन्तिका के नृत्य के माध्यम से ग्रन्थकार ने नाट्य-शास्त्र में वर्णित नियमों का भी वर्णन अध्याय ५० में किया है।

वासन्तिका नृत्य, गान तथा भावाभिनय में प्रवीण थी। भाव, कटाक्ष एवं हेतु शुङ्खार-रस के आदि बीज हैं। प्रेम, मान, प्रणय, स्नेह, राग, अनुराग उसके अंग हैं। कटाक्ष तीन प्रकार के होते हैं— श्याम, श्वेत एवं श्वेत-श्याम। इसी प्रकार हास भी तीन प्रकार का होता है। अभिनय चार प्रकार के होते हैं—आङ्गिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक। इतिकर्तव्यता दो प्रकार की कही गई है—चित्तवृत्यर्पिका एवं वाह्यवस्त्वनुकारिणी। नाट्य धर्म दो प्रकार के होते हैं— लोकधर्म्य एवं सनातन। दृष्टि के दश प्रकार हैं—जवत्त्व, स्थिरता, रेखा, भ्रमरी, अश्रम-दृष्टि, प्रीति, मेधा एवं गीति। सम्प्रदाय का अनुसरण मुद्रा होती है।

जो आङ्गिक अभिनय से व्यक्त की जाती है उसे मार्ग नृत्य कहते हैं। अंगों के संचालन से, जिसमें अभिनय नहीं होता उसे समीरज नृत्य कहते हैं। ताल एवं लय पर आश्रित नृत्य सुरेखाक संज्ञक होता है। शिर, नेत्र आदि अंगों के सञ्चालन एवं मध्य-भाग के निरन्तर वर्तन से तथा प्रमाण-रेखा (कायस्थितिर्मनोनेत्रहारी रेखा-५०। १८) से युक्त नृत्य को मद-नृत्य कहते हैं। इधर दृष्टि हो, उधर हस्त हो, जहाँ दृष्टि हो, उधर मन हो, जहाँ मन हो वहाँ भाव हो, भाव से रस प्रगट हो, अङ्ग सञ्चालन से एवं हाथों से गीत का अभिनय हो तभी सुन्दर नृत्य होता है।

नृत्य एवं अभिनय में नेत्रों से भावाभिनय होता है। पैरों से ताल का निर्णय होता है। पैरों की गति या थिरकन के सात भेद होते हैं। भानवी, मैनवी, गजलीला, तरङ्गिणी, हेंसी, मृगी तथा खञ्जरीटी। लास्य नृत्य के लिये लाव, हंस, मयूर, हय, कुञ्जर, तितिर, कुक्कुट एवं मीन की गति कही गयी है। ये सब नृत्य के भेद हैं।

इस प्रकार नृत्य एवं नाट्क के विशद् वर्णन में यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार को नाट्य शास्त्र का तत्त्वस्पर्शी ज्ञान था।

### पृथिवी एवं भारतवर्ष का वर्णन

देवों ने विमान से आकाश में उड़ते हुये(अ. १७) पृथिवी का, पृथिवी में जम्बू द्वीप एवं भरत खण्ड (भारत वर्ष) का दर्शन किया।

विमान से उड़ते हुये पृथिवी सप्त समुद्रों, द्वीपों, सागरों, पर्वतों एवं वनों से युक्त दिखाई पड़ी। भूमि का स्वरूप बलयाकार परिलक्षित हो रहा था। पृथिवी के मध्य में

सुमेरू सुवर्ण-पुष्प सा प्रतीत हो रहा था एवं जम्बूद्वीप के नौ खण्ड दिखाई पड़ रहे थे।  
भारत खण्ड-

जम्बू द्वीप के नौ खण्डों में एक खण्ड का नाम भरत खण्ड (भारत वर्ष) है। इसे कर्म-भूमि कहा गया है। यहाँ देवों की अराधना कर के स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है एवं सौ यज्ञ करने वाला देवराज बनता है। इसमें भी हिमालय से विन्ध्य पर्वत के मध्य रहने वाले अतीव भाग्यशाली होते हैं। भरत-खण्ड के पुण्य-शाली क्षेत्रों में सागर के समीप स्थित जगन्नाथ का स्थान, विश्वनाथ की काशी, पितरों का तर्पण-स्थल गया, तीर्थराज प्रयाग, चित्रकूट, महेन्द्र, दर्दुर, ऋक्षवान् तथा सह्याद्रि आदि पर्वत, व्यङ्गटेश का स्थल, सेतुबन्ध रामेश्वर, द्वारका, मायापुरी (हरिद्वार), मथुरा, बृन्दावन एवं अयोध्या आदि परिगणित हैं।

### कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका

सत्योपाख्यान ग्रन्थ में जहाँ एक ओर राम कथा प्रधान रूप से चलती रहती है, वहीं कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका भी तैयार होती चलती है। इसमें सर्वप्रथम रत्नकला(पाठभेद में रत्नालका नाम भी प्राप्त होता है।) एवं वीरसिंह की कथा (अ. २९,३०) है। वीरसिंह रघुवंशी थे। रत्नकला ने श्रीराम को शिशु रूप में गोद में लिये राजा दशरथ को देखा। उसके मन में शिशु राम को गोद में लेने की अदम्य लालसा हुई एवं वह रुण हो गयी। उसको अस्वस्थ जानकर रानी कौशलत्या अपने पुत्र के साथ उसे देखने गयीं। रत्नकला ने उन्हें गोद में लेकर उनको अपने गले से लगा लिया एवं मन ही मन उनके जैसे पुत्र की कामना करते हुये भगवान् विष्णु का स्मरण किया। इसके पश्चात् पति-पत्नी ने श्री राम की इच्छा से प्रेरित होकर वशिष्ठ ऋषि से इस तरह के पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा। वशिष्ठ ऋषि ने ध्यान करके देखा कि बाल स्वरूप राम ही भविष्य में कृष्ण होंगे। उन्होंने उस दम्पति को तप करने को कहा। ध्यान में ही उन्हें यह ज्ञात हुआ कि द्वापर युग के अन्त में वीर सिंह नन्द एवं रत्नकला यशोदा के रूप में गोकुल में जन्म लेंगे एवं यही राम कृष्ण के रूप में उनके पुत्रत्व को प्राप्त करेंगे—

द्वापरान्ते युधां जन्म लभेतां गोकुले पुनः।  
वीरसिंहस्तु नन्दो वै यशोदा च भवेत्वियम्।  
रामोयं कृष्णारूपेण पुत्रत्वं च भविष्यति॥

—३०। ३१,३२

राम के कृष्णावतार की अगली सम्भावना (अ. ५३)। विश्वामित्र के साथ वन जाते हुये श्री राम के मन में उठे विचार से प्राप्त होती है। वन के मार्ग में श्री राम गायों,

बछड़ों एवं उन्हें दुहते हुये गोपालों को देखते हैं। उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं भी अगले अवतार में द्वापर युग में ऐसा करूँगा—

गावश्च दुहतो वत्सान् लिहन्ती च ददर्श च।  
ताश्च दृष्ट्वा तदा रामो भनसा च विद्यारथत्।।  
अहमप्येवं करिष्यामि द्वापरे कृष्णजन्मनि।

—५३। २८२९

ग्रन्थकार की दृष्टि में राम एवं कृष्ण एक ही हैं। उनमें भेदबुद्धि अनुचित है—

रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधवः।

तयोः भेदं न कर्तव्यं कृत्वा पापमानुयात्॥ —३०। ६१

### ग्रन्थ का वैशिष्ट्य

अन्य रामायणों एवं रामकथाओं से सत्योपाख्यान में वर्णित राम कथा किञ्चित् विशिष्ट है, यद्यपि राम कथा के प्रधान पात्र अन्य राम-कथा-परक ग्रन्थों के ही हैं। ग्रन्थ-वैशिष्ट्य इस प्रकार है—

१. सत्योपाख्यान में राम-कथा श्रीरामादि चारों भाइयों के विवाह तक ही है। विवाह के पश्चात् सभी भाई एवं उनकी पत्नियाँ अयोध्या में स्थित तीर्थों का भ्रमण करते हैं एवं उसी के साथ ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है।

२. रामावतार की उद्भावना भी इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। श्रीराम को विष्णु का अवतार एवं लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार सर्वत्र राम कथाओं में माना गया है किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न को शंख एवं चक्र का अवतार यहीं माना गया है। इस प्रकार श्री राम यहीं शंख, चक्र एवं शेष के साथ अवतरित वर्णित हैं।

३. मन्थरा के पूर्व जन्म का वृत्तान्त एवं पूर्व जन्म से विष्णु से वैर की कथा इसी ग्रन्थ में प्राप्त होती है।

४. दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में नारद का एवं देवयोगिनी का योगदान इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

५. द्वापर-युग में श्रीराम का कृष्ण के रूप में अवतार के बीज इसी राम कथा में प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में रत्नकला एवं वीरसिंह को यशोदा एवं नन्द के रूप में जन्म लेना एवं कृष्ण का उनके पुत्र के रूप में उनके यहीं रहना रामावतार में ही सुनिश्चित हो जाता है।

६. श्री राम एवं अयोध्या पुरी से सम्बद्ध कथायें अन्य राम कथाओं में नहीं प्राप्त

सुमेरु सुवर्ण-पुष्प सा प्रतीत हो रहा था एवं जम्बूदीप के नौ खण्ड दिखाई पड़ रहे थे।

### भारत खण्ड-

जम्बू दीप के नौ खण्डों में एक खण्ड का नाम भरत खण्ड (भारत वर्ष) है। इसे कर्म-भूमि कहा गया है। यहाँ देवों की अराधना कर के स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है एवं सौ यज्ञ करने वाला देवराज बनता है। इसमें भी हिमालय से विन्ध्य पर्वत के मध्य रहने वाले अतीव भाग्यशाली होते हैं। भरत-खण्ड के पुण्य-शाली क्षेत्रों में सागर के समीप स्थित जगन्नाथ का स्थान, विश्वनाथ की काशी, पितरों का तर्पण-स्थल गया, तीर्थराज प्रयाग, चित्रकूट, महेन्द्र, दर्दुर, ऋक्षवान् तथा सह्याद्रि आदि पर्वत, व्यङ्गटेश का स्थल, सेतुबन्ध रामेश्वर, द्वारका, मायापुरी (हरिद्वार), मथुरा, वृन्दावन एवं अयोध्या आदि परिगणित हैं।

### कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका

सत्योपाख्यान ग्रन्थ में जहाँ एक ओर राम कथा प्रधान रूप से चलती रहती है, वहाँ कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका भी तैयार होती चलती है। इसमें सर्वप्रथम रत्नकला(पाठभेद में रत्नालक्ष का नाम भी प्राप्त होता है।) एवं वीरसिंह की कथा (अ. २९,३०) है। वीरसिंह रघुवंशी थे। रत्नकला ने श्रीराम को शिशु रूप में गोद में लिये राजा दशरथ को देखा। उसके मन में शिशु राम को गोद में लेने की अदम्य लालसा हुई एवं वह रुण हो गयी। उसको अस्वरूप जानकर रानी कौशल्या अपने पुत्र के साथ उसे देखने गयीं। रत्नकला ने उन्हें गोद में लेकर उनको अपने गले से लगा लिया एवं मन ही मन उनके जैसे पुत्र की कामना करते हुये भगवान् विष्णु का स्मरण किया। इसके पश्चात् पति-पत्नी ने श्री राम की इच्छा से प्रेरित होकर वशिष्ठ ऋषि से इस तरह के पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा। वशिष्ठ ऋषि ने ध्यान करके देखा कि बाल स्वरूप राम ही भविष्य में कृष्ण होंगे। उन्होंने उस दम्पति को तप करने को कहा। ध्यान में ही उन्हें यह ज्ञात हुआ कि द्वापर युग के अन्त में वीर सिंह नन्द एवं रत्नकला यशोदा के रूप में गोकुल में जन्म लेंगे एवं यही राम कृष्ण के रूप में उनके पुत्रत्व को प्राप्त करेंगे—

द्वापरान्ते युधां जन्म लभेतां गोकुले पुनः।

वीरसिंहस्तु नन्दो वै यशोदा च भवेत्विद्यम्।

रामोयं कृष्णास्तपेण पुन्नत्वं च भविष्यति॥।

—३०। ३१,३२

राम के कृष्णावतार की अगली सम्भावना (अ. ५३)। विश्वामित्र के साथ वन जाते हुये श्री राम के मन में उठे विचार से प्राप्त होती है। वन के मार्ग में श्री राम गायों,

बलड़ों एवं उन्हें दुहते हुये गोपालों को देखते हैं। उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं भी अगले अवतार में द्वापर युग में ऐसा करूँगा—

गावश्च दुहतो वत्सान् लिहन्ती च ददर्श च।  
ताश्च दृष्ट्वा तदा रामो भनसा च विचारयत्॥  
अहमप्येवं करिष्यामि द्वापरे कृष्णाजन्मनि।

—५३। २८,२९

ग्रन्थकार की दृष्टि में राम एवं कृष्ण एक ही हैं। उनमें भेदबुद्धि अनुचित है—

रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण मादवः।  
तयोः भेदं न कर्तव्यं कृत्वा पापमान्यात्॥ —३०। ६१

### ग्रन्थ का वैशिष्ट्य

अन्य रामायणों एवं रामकथाओं से सत्योपाख्यान में वर्णित राम कथा किञ्चित् विशिष्ट है, यद्यपि राम कथा के प्रधान पात्र अन्य राम-कथा-परक ग्रन्थों के ही हैं। ग्रन्थ-वैशिष्ट्य इस प्रकार हैं—

१. सत्योपाख्यान में राम-कथा श्रीरामादि चारों भाइयों के विवाह तक ही है। विवाह के पश्चात् सभी भाई एवं उनकी पत्नियाँ अयोध्या में स्थित तीर्थों का भ्रमण करते हैं एवं उसी के साथ ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है।

२. रामावतार की उद्भावना भी इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। श्रीराम को विष्णु का अवतार एवं लक्ष्मण को शोषणाग का अवतार सर्वत्र राम कथाओं में माना गया है किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न को शंख एवं चक्र का अवतार यहाँ माना गया है। इस प्रकार श्री राम यहाँ शंख, चक्र एवं शेष के साथ अवतरित वर्णित हैं।

३. मन्थरा के पूर्व जन्म का वृत्तान्त एवं पूर्व जन्म से विष्णु से वैर की कथा इसी ग्रन्थ में प्राप्त होती है।

४. दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में नारद का एवं देवयोगिनी का योगदान इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

५. द्वापर-युग में श्रीराम का कृष्ण के रूप में अवतार के बीज इसी राम कथा में प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में रत्नकला एवं वीरसिंह को यशोदा एवं नन्द के रूप में जन्म लेना एवं कृष्ण का उनके पुत्र के रूप में उनके यहाँ रहना रामावतार में ही सुनिश्चित् हो जाता है।

६. श्री राम एवं अयोध्या पुरी से सम्बद्ध कथायें अन्य राम कथाओं में नहीं प्राप्त

होती हैं।

७. सत्योपाख्यान में श्रीराम का श्रुंगार-रस से सम्बन्ध भी परिलक्षित होता है। अध्याय ४३ में युवा श्री राम को देखकर अयोध्या की नारियों का शृङ्गार-प्रक हाव-भाव इसका उदाहरण है इस प्रकार की शैली में राम कथा भुशुण्ड रामायण में प्राप्त होती है। वहाँ राम-कथा पर कृष्ण-लीला का प्रभाव परिलक्षित होता है। पटना के विद्वान् पं. भवनाथ ज्ञा (सम्पा.अगस्त्य संहिता,महावीर मन्दिर प्रकाशन,पटना) के २६.११.२०१० को हुई वार्ता के अनुसार सत्योपाख्यान ग्रन्थ,के श्रीराम पर रसिक सम्प्रदाय का प्रभाव है।

८. सत्योपाख्यान में धनुर्भङ्ग के पश्चात् परशुराम आते तो हैं किन्तु उनका विवाद नहीं प्राप्त होता। वह श्री राम को प्रणाम कर चले जाते हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में अनेक वैशिष्ट्य प्राप्त होते हैं।

### मातृका परिचय

अज्ञात कर्तृक इस ग्रन्थ की दो मातृकायें प्राप्त हुई हैं। यह ग्रन्थ दो भागों पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध में प्राप्त है। पूर्वार्ध में ४९ अध्याय एवं उत्तरार्ध में ५० वें अध्याय से ७९ अध्याय हैं। पूर्वार्ध में श्रीराम की बाल-लीला, काक भुशुण्ड की कथा, रत्नकला की कथा एवं निषाद राज गुह से मृगया की शिक्षा पाना उल्लिखित हैं तथा उत्तरार्ध में सीता-स्वयंवर, राम-सीता का विवाह एवं श्री राम का सीता अपने भाइयों तथा उनकी पत्नियों समेत तीर्थ-यात्रा वर्णन हैं।

### क-मातृका-

संवत् १८९९ की जानकीजीवनसरन वर्मा द्वारा प्रतिलिपि की गई यह मातृका एक संन्यासी से व्यक्तिगत स्तर पर प्राप्त हुई थी। देवनागरी लिपि में प्राप्त यह मातृका पूर्ण नहीं है। इसमें ४० वें अध्याय में ११ से २३ श्लोक नहीं प्राप्त होते हैं।

### पूर्वार्ध पुष्टिका-

पूर्वार्ध सम्पूर्णम्। शुभम्। श्रीजानकीवल्लभार्णमस्तु। श्री रामजन्मनवमी दिने पूर्ण। संवत्-१८९९। श्रीगुरुस्वपठनार्थं निजलिपिकृतम् जानकीजीवनसरनवर्मनेति। श्री शुभं भवतु।

### उत्तरार्ध पुष्टिका-

श्री श्री श्री

## ग मातृका-

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ ज्ञा परिसर, प्रयाग के हस्तलेख विभाग से प्राप्त यह मातृका देवनागरी लिपि में प्राप्त होती है। यह मातृका भी पूर्ण नहीं है। यह २२ वें अध्याय से प्राप्त होती है। इसका प्रतिलिपिकाल १८८७ तथा १८८९ है। काल की दृष्टि से यह मातृका प्राचीन है।

## पूर्वार्ध पुण्यिका-

इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनक संवादे एकोपचाशत्तमोऽध्यायः संवत् १८८७।  
सत्योपाख्यानपूर्वार्द्ध समाप्तः।

## उत्तरार्ध पुण्यिका-

शुभ भवतु संमत् १८८१ मिति कार्तिक मासे शुक्लपक्षे ३ चं।

दोनों ही मातृकाओं की लिपि स्पष्ट है किन्तु वर्तनी दोष दोनों में ही प्राप्त होते हैं।

## काल-

इस ग्रन्थ हस्तलेख के काल के विषय में कुछ निश्चित रूप कहना कठिन है। कामिल बुल्के के अनुसार इसका समय १५००-१६०० ई० सम्भव है। (रामकथा, पृ. ६०१) हस्तलेख के मातृकाओं से प्रतिलिपि १९ वीं शताब्दी हुई है। इस ग्रन्थ के कर्ता के विषय में कोई सूचना नहीं प्राप्त है।

## कृतवेदिता-निवेदन

सर्व-प्रथम मैं अपनी कृतवेदिता पुष्पाञ्जलि भगवान् शिव एवं पार्वती के चरणों में समर्पित करती हूँ, जिनकी कृपा से यह कार्य पूर्ण हो सका।

गंगानाथ ज्ञा परिसर के पूर्व-प्राचार्य प्रो. गोपराजु राम ने इस कार्य को करने की स्वीकृति प्रदान की। तदन्तर पूर्व-प्राचार्य प्रो. सुरेन्द्र ज्ञा ने इस कार्य को अग्रसर कराया एवं वर्तमान प्राचार्य डॉ. प्रकाश पाण्डेय के सहयोग से यह कार्य प्रकाशित हो रहा है, अतः मैं परिसर के तीनों प्राचार्यों को अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करती हूँ। इस ग्रन्थ की कलेक्टर रूप में प्रस्तुति परिसर के वर्तमान प्राचार्य प्रो० सर्वनारायण ज्ञा, की कायिक वाचिक एवं मानसिक सहयोग एवं प्रेरणा से सम्भव हो सकी, अतः उनको मेरा शतशः नमन अर्पित है। मध्य काल में कार्यकारी प्राचार्य प्रो. शैलकुमारी मिश्र के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता निवेदित करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरे कार्य को प्रोत्साहित किया। हस्तलेख विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. वीना मिश्र के सहयोग से ग-मातृका तथा जिस सन्त से क-मातृका प्राप्त हुई, दोनों को मैं हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

परिसर के ही मेरे मित्र डॉ. विश्वम्भर नाथ गिरि, रीडर, ने कार्य में काटिन्य आने पर अपना सत्परामर्श प्रदान किया, मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ। मैं शुद्ध संशोधन एवं पृष्ठविन्यास के लिये श्री ब्रह्मानन्द मिश्र को तथा सुन्दर प्रकाशन हेतु मुद्रक महोदय को धन्यवाद देती हूँ, जिनके प्रयत्नों से मेरा यह कार्य मूर्त हो सका। अन्त में अपने सभी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगियों को धन्यवाद प्रदान करती हूँ तथा त्रुटियों के लिये सहदय विद्वान् पाठकों से क्षमा याचना करती हूँ।

विदुषां वशंवदा,  
शैलजा पाण्डेय



---

---

सत्योपाख्यानम्

---

---

मङ्गलानि प्रजाभ्यस्तु नृपेभ्यस्तु सदैव हि।  
साधुगोभूमिविप्रेभ्यः श्रीशो दिशतु मङ्गलम्॥

## प्रथमोऽध्यायः

श्री नमो बल्लभाय नमः श्रीमते रामायानुजाय नमः

दशरथसुतरामं योगिध्येयांग्रिद्वंद-

मजशिवसनकादैः पूज्यमानं सदैव।

हृदि हृदि कृतवासं रामभद्राख्यदेवं

तमहमखिलसेव्यं सर्वकरणैर्नतोस्मि॥ १॥

सूतं सर्वपुराणज्ञं सर्वशास्त्रार्थकोविदम्।

नमस्कृत्याद्गुवन्सर्वे ऋषयः शौनकादयः॥ २॥

ऋषयः ऊचुः

भो भो सूत महावुद्धे सर्वशास्त्रविशारद।

श्रीरामस्य कथां पुण्यां कथयस्व प्रसादतः॥ ३॥

श्री सूत उवाच

विप्रवर्या शृणुष्वं हि श्रीरामस्य कथां शुभाम्।

व्यासेन कथितां पूर्वं तामहं कथयामि वः॥ ४॥

चित्रकूटं महापुण्यं पर्वतानां हि सुन्दरम्।

वाल्मीकिश्च महातेजा न्यवसद्धर्मतत्परः॥ ५॥

दर्शनार्थं मुनेस्तस्य मार्कण्डेयो महामुने।

आजगाम चिरायुर्हि चित्रकूटालयं मुनिः॥ ६॥

तमागतं मुनिं दृष्ट्वा वाल्मीकिश्च महातपाः।

उत्थाय पूजयामास भार्गवं भृगुवंशजः॥ ७॥

दिव्यासने निवेश्याथ उवाच मुनिसत्तमम्।

कृपां कृत्वा त्वया विप्रं तीर्थीकृतं ममाश्रमम्॥ ८॥

किमर्थमागतोऽसि त्वं शीघ्रं कथय भार्गव।

श्री सूत उवाच

इत्येवं मुनिना पृष्ठो मार्कण्डेयोऽथ बुद्धिमान्॥ ९॥

उवाच प्रणतो वाक्यं वाल्मीकिं च तपोधनम्।

मार्कण्डेय उवाच

प्राचेतस महाभाग श्रीरामस्य कथां शुभाम्॥१०॥

कथयस्व भहाबुद्द्वे रामस्य परमात्मनः।

श्री वाल्मीकि उवाच

सर्वं जानासि रामस्य चरितं हि महामुने॥११॥

तथापि कथयिष्यामि तव प्रीत्या हि सुन्नत।

रामो नारायणः साक्षात् सर्वदेवैश्च प्रार्थितः॥१२॥

पृथ्वीभारावताराय जातो दशरथात् स्वयम्।

अङ्गणे रिंगमाणाश्च मातृभिः सहितोनघः॥१३॥

धूलिधूसरसर्वाङ्गः धातृभिः परिरक्षितः।

शिरोरुहैर्वृतमुखः पीतवेष्टनशोभितः॥१४॥

कञ्चुकेनावृतो रामः कुण्डलाभ्यां विराजितः।

अङ्गदे च महादिव्ये वलये रत्नभूषिते॥१५॥

नूपुरादीनि दिव्यानि सर्वाङ्गेषु विधारयन्।

चकार क्रीडां रामो हि ज्ञातीनां सुखमावहन्॥१६॥

एकदा तु गृहं राज्ञो वसिष्ठो भगवान् ऋषिः।

विवेश भवनं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम्॥१७॥

बिभ्रति गजाभारं महायोगेश्वरो मुनिः।

तपागतं मुनिं दृष्ट्वा चेटिकाश्च सहस्रशः।

कौशल्यां च समाजगमुः सुमित्रां च तथापराः॥१८॥

कैकेयीं च तथा सर्वा ऊचुः वाक्यं ससम्प्रमम्।

देव्या शृणुत भद्रं वः साम्प्रतं तु उपस्थितम्॥१९॥

यस्माद् गृहान् समायातो गुरुः पद्मासंभवः।

स्वं स्वं पुत्रं समादाय गम्यतां मुनिसन्निधौ॥२०॥

वन्दनीयो गुरुर्देव्यो यस्मादज्ञाननाशनः।

इति वाक्यं च ता श्रुत्वा सर्वा हर्षसमन्विताः॥२१॥

१. सुषमा वहन् - क

२. त्युपस्थितम् - क

कौशल्या तु करे रामं प्रगृह्य कलनूपुरम्।  
 मन्दं मन्दं च गच्छन्तमिन्द्रनीलमणिप्रभम्॥२२॥

कौशल्या पुत्रसहिता मुने पादौ ननाम च।  
 पूजां सर्मर्येहिव्यां रामहस्तेन मुन्दरी॥२३॥

वशिष्ठोऽपि महातेजा राममूर्द्धिन करं दधत्।  
 चिरंजीव चिरंजीव चिरंजीवावदद्वशी॥२४॥

सिंहासने समासीनो राममङ्गे न्यवेशयत्।  
 तस्मिन्काले सुमित्रा तु पुत्रावादाय सुप्रभा॥२५॥

ववन्दे च मुने: पादौ पुत्राभ्यां च शुचिस्मिता।  
 मङ्गलं मङ्गलं पुत्रौ तथो मूर्द्धिन करं दधत्॥२६॥

उवाच शिष्य धर्मात्मा पाश्वें बालौ निवेशयन्।  
 अन्तःपुरः स्त्रियः सर्वाः मुनिं वीक्ष्य मुदं ययुः॥२७॥

कैकेयिनाम्नी खलु केकयस्य  
 राज्ञस्तु पुत्री भरतस्य माता।

दास्या पुनर्मर्थरया प्रयुक्ता  
 पुत्रेण हस्तांगुलिलम्बिता च॥२८॥

सखीभिः सार्द्धं व्यजनादिग्राहिभि-  
 जंगाम मन्दं मुनिसंनिधानम्।

सा वादयंती चरणारविन्दं  
 वस्त्रेण देहं वसती सलञ्जा॥२९॥

ववन्द मूर्द्धना मुनिमास्थितं सा  
 तथा स्वपुत्रं नमयत् करेण।

मुनिस्तु त्रुस्योपरिहस्तमादधद्।  
 यशो लभस्वेत्यवदच्छुभवाणी॥३०॥

राजपत्नीश्च तां दृष्ट्वा मुनिर्वचनमब्रवीत्।  
 सदैव कुशलं देव्याः युष्मासु सुमतीषु च।

पुत्राः क्रीडन्ति क्षेमेन राजा धर्मेण रक्षता॥३१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने श्रीवाल्मीकिमार्कण्डेयसंवादे प्रथमोऽध्यायः।

□ □

## द्वितीयोऽध्यायः

श्रीकौशल्योवाच

सर्वदा कुशलं नाथ त्वयि तिष्ठति रक्षके।  
 यथा सूर्ये दिवस्थे च न भयं तमसो भवेत्॥१॥  
 परं तु मम सन्देहो वर्तते हृदि सर्वदा।  
 कदाचिद् रामं पश्यामि स्वज्ञे परमभास्वरम्॥२॥  
 गरुडोपरि राजनं शङ्खचक्रधरं सुतम्।

सुमित्रोवाच-

ममापि शृणु विप्रर्षे स्वज्ञे पश्यामि लक्ष्मणम्॥३॥  
 सहस्रशिरसं नागं रजतस्येव विग्रहम्।

कैकेय्युवाच-

अहं पश्यामि भो विप्र भरतं शङ्खरूपिणम्॥५॥  
 अन्या सपल्य ऊचु-

अस्माभिर्दृश्यते रामो देवदेवो हरिः स्वयम्।  
 क्षितीशस्य तु पलीनां बाक्यं श्रुत्वा महामुनिः॥६॥  
 अन्तर्गतमना भूत्वा ध्यानस्तिमितलोचनः।  
 रामो नारायणः साक्षात् भूभारहरणाय च॥७॥  
 रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो हनिष्यति।  
 एतास्त्वं न जानन्ति रामस्य परमात्मनः॥८॥  
 मयापि न च वक्तव्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः।  
 यथा एता न जानन्ति परं तत्त्वं महात्मनः॥९॥  
 विदिते परतत्त्वे च पुत्रभावं व्रजिष्यति।  
 पुत्रभावे गते नूनं पुत्रभावसुखेन हि॥१०॥

इति ध्यात्वा मुनिस्तूर्णं प्रहसन्नाह सुन्दरी।

श्री वशिष्ठ उवाच-

एते पुत्रा महात्मानो नारायणसमोगुणैः॥११॥  
तस्मात् स्वज्ञे हि दृश्यन्ते विष्णुपार्वदस्त्रयिणः।

राजपत्न्यः ऊचुः-

वेतालभूतप्रेताश्च डाकिन्यः किल हे गुरो॥१२॥  
मारिका राक्षसा ब्रह्मन् बाधन्ते न तथा कुरु।  
अजिरे क्रीडमानाश्च दृष्टिदोषो न कस्यचित्॥१३॥  
रक्षां च क्रियतां स्वामिन् सर्वोपद्रवधातिनी॥१४॥  
इक्ष्वाकुवंशस्य गुरुस्त्वमेव त्वमेव पूज्यो रघुभिः सदैव।  
तस्मात्त्वया पाल्यत एवं सर्वे तवैव भृत्या वयमेव सर्वे  
तासां विज्ञापितं श्रुत्वा मुनिश्च सुस्मिताननः॥१५॥

श्री वसिष्ठ उवाच-

समीचीनं वचो देव्यो युष्माभिः समुदाहृतम्।  
बालकानां च रक्षार्थमागमिष्यामि नित्यशः॥१६॥  
जगामाथ महातेजाः पूर्ववृत्तं विचारयन्।  
एषामर्थे मया पूर्वं पौरोहित्यं च स्वीकृतम्॥१७॥  
धन्या एता हि रामस्य मातरः सुकृतमूर्तयः।  
धन्यो राजा दशरथो धन्यायोद्या महापुरी॥१८॥  
धन्योहं गुरुरेतेषां तस्मान् महां नमन्त्यमी।  
इति ध्यायन् महातेजाः पूज्यमानो नृभिः पथि॥१९॥  
विवेश भवनं दिव्यं स्वकुण्डोपरिराजितम्।  
शिष्यैः परिवृतं रम्यं तथा सदिभर्निषेवितम्॥२०॥  
एवं वशिष्ठो नित्यं हि रामदर्शनलालसः।  
चकार दर्शनं हृष्टो रक्षाव्याजेन नित्यदा॥२१॥

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा मुने पादावभिवन्द्यमृकुण्डजः।  
वाल्मीकिं समुवाचेदं गिरा गद्गदया मुनिः॥२२॥

## मार्कण्डेय उवाच-

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रामतच्चं श्रुतम्।  
इदानीं गतसन्देहो जातोऽहं मुनिपुङ्गव॥२३॥

## सूत उवाच-

परिक्रम्य मुनिः प्रीत अयोध्यां विविशे मुदा।  
रामचन्द्रं च दृष्ट्वा सः नत्वा स्वाश्रममीयवान्॥२४॥  
पुष्पभद्रातटे रथ्ये नानामुनिगणैर्वृतम्।  
वसन्ति यत्र सत्त्वानि निर्वैराणि निसर्गतः॥२५॥

यत्राश्रमेऽभूत् किल कामदेवो,  
नारीभिः सार्द्धं विकलप्रयासः।

मृदङ्गनादैर्युवतीकटाक्षैः-  
र्नक्षोभयामास मुनेश्च मानसः॥२६॥

श्रीरामचन्द्रस्य पदारविन्दं  
लक्ष्मीः कराभ्यां परिशीलितं च।  
ध्यायत् स्वचित्ते रमते सदैव  
मुनिश्चिरायुर्वत हे द्विजागद्वा॥२७॥

इति श्रीसत्योपाख्याने श्रीवाल्मीकिमार्कण्डेयसंवादो नाम  
द्वितीयोऽध्यायः

□ □

## तृतीयोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

अन्यत् कथय रामस्य चरितं परमादभुतम्।  
एकैकमक्षरं नृणां पापपर्वतदारणम्॥१॥  
मानुषं जन्म संप्राप्य रामं न भजते हि यः।  
वज्जितः कर्मणा पाप इति जानीहि बुद्धिमान्॥२॥

श्रीसूत उवाच-

रामचन्द्रपदे द्वन्द्वे पद्ये मकरंदं षट्पद।  
चरितं शृणुत देवस्य कथ्यमानं मया महत्॥३॥  
एकदा रामचन्द्रस्तु मातुरङ्गे मनोहरः।  
चकार क्रीडां बलवान् परमात्मा नराकृतिः॥४॥  
तस्मिन् काले च रामस्य कौशल्यामाजगाम वै।  
नामा धन्येति विख्याता धात्री परमसुन्दरी॥५॥  
विभ्रती नासिकायां च मुक्तां च मणिसंयुता।  
कर्णयोः कुण्डले दिव्ये ललाटे च महामणिः॥६॥  
अलकान् विभ्रती रम्यान् द्विरेफालेलकारकान्।  
दन्तैश्छब्दिं च मुहूर्ती दाढिमस्य मनोहराम्॥७॥  
नेत्राभ्यां शतपत्रस्य विभ्रन्ती भावमुत्तमम्।  
कण्ठे हारं च विभ्राणास्तनयोर्मध्यलम्बितम्॥८॥  
वसाना कञ्चुकीरकतां स्वर्णबिन्दुविराजिताम्।  
अङ्गदाभ्यां च राजन्ति बलयैश्च प्रकोष्ठगैः॥९॥  
अंशुकोपरि राजन्ती वादयन्ती च मेखला।  
पादयोः पादकटकैः हंसकादिविभूषिताः॥१०॥  
शाद्या चाङ्गानि गृहन्ती सूक्ष्मया नीलवर्णया।  
एतस्मिन्नतरे रामो धात्रीं वीक्ष्य मुदायुतः॥११॥

मातुरङ्गात् समुत्थाय तस्याः क्रोडं जगाम च।  
सा तु रामं समादाय निजाङ्के समवेशयत्॥१२॥  
उवाचाथ च कौशल्यां पुरन्धी राममातरम्।

श्रीधन्योवाच-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तं हृदयं महत्॥१३॥  
साम्प्रतं वर्तते राजा कैकेयीभवने शुभे।  
मौविदल्लैर्भया ज्ञात्वा तस्मादज्ञां च देहि मे॥१४॥  
अद्य रामं विभूष्यामि भूषणैः सुमनोहरैः।  
नयामि भूपतेः पाश्वं कैकेय्या सह तिष्ठतः॥१५॥

सूत उवाच-

इति वाक्यं तु सा श्रुत्वा जगाद शुभया गिरा।

श्रीकौशल्योवाच-

ईदृशी यदि ते श्रद्धा नय रामं मनोहरे॥१६॥  
तदा शीघ्रं तु सा धात्री रामं संभूष्य भूषणैः।  
कैकेय्या भवनं प्राप राममङ्के निवेश्य च॥१७॥  
अन्याश्च शतशः सख्यस्तथा बाला अनेकशः।  
रामस्य क्रीडकं ग्राह्य धात्रीमनुयथु शुभाः॥१८॥  
कैकेय्या भवनं रम्य दासदासीसमाकुलम्।  
सारिकाशुक्रहंसैश्च कृत्रिमाकृत्रिमैर्युतम्॥१९॥  
मृदङ्गनादैर्गीतैश्च नादितं विस्मयावहम्।  
मणिदामवितानैश्च वज्रयष्टिभिरुच्छ्रौतैः॥२०॥  
छादितं प्राङ्गणं यत्र मणिकाचैश्च निर्मितम्।  
लसन्ति स्वर्णभाण्डानि दिव्यरत्नमयानि च॥२१॥  
प्रासादे परिनृत्यन्ति मृदङ्गध्वनिगर्जितैः।  
वितत्पश्वस्य बर्हाणि मयूरास्तु मनोहराः॥२२॥  
लज्जया तत्र पश्यन्ति राजानं कशिपौ स्थितम्।  
साटीमध्यगतैर्नार्थैः लोचनैः कर्णविस्तृतैः॥२३॥  
पर्यङ्गास्तत्र वर्तन्ते गजदन्तमयाः शुभाः।  
तत्रासीनो दशरथो धर्मात्मा धर्म वापरः॥२४॥

चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्यमानो नरेश्वरः।  
कैकेयी च महाराज्ञी राज्ञो निकटवर्तिनी॥२५॥  
हसती हासयन्ती च महाराजं च वीक्षती।  
लालयानो हि भरतं यत्र तात हि सादरम्॥२६॥

सूत उवाच-

तस्मिन्वसरे धात्री रामस्य रामसंयुता।  
प्राप्ता समीपं राज्ञस्तु सखीभिः परिवारिता॥२७॥  
राजा दशरथो राममपश्यद् धर्मसङ्ग्रहः।  
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवेष्टनवेष्टितम्॥२८॥  
उयः शुक्रसमं चारु दधनं नसि मौकितकम्।  
स्वहस्ते वज्रयष्टिं च दधानं पीतकञ्चुकम्॥२९॥  
रामं त्वशिक्षयद् धात्री नमो भव नरेश्वरम्।  
तथैव हे पुत्र राज्ञीं तात तात च शीघ्रतः॥३०॥  
धात्र्या वाक्यं तु संश्रुत्वा रामस्तु सुस्मिताननः।  
प्रणाम पितुः पदभ्यां कैकेय्या पुनरेव हि॥३१॥  
राजा दशरथः स्वाङ्के रामं प्रीत्या न्यवेशयत्।  
ततान पितुरानन्दं रामो जनमनोहरः॥३२॥  
पश्चाद्रामं तु सा राज्ञी निजाङ्के समकल्पयत्।  
जिद्धे शिरसि रामस्य प्रेष्णस्तु हि परागतिः॥३३॥  
उवाच सुमुखी सुभू सस्मितं वीक्षती नृपम्।

श्रीकैकेयुवाच-

शृणु राजन्महाबाहो रामे मम रतिर्दृढा॥३४॥  
ईदृशी भरतो नैव यथा रामे प्रवर्तते।

श्री राजोवाच-

सत्यं वदसि भो देवि रामे तव रतिर्धुवा॥३५॥  
इत्थं वदति भूपाले लक्ष्मणोप्याजगाम च।  
कन्दुकं धारयन् हस्ते कुमारः क्रीडयन् सखीन्॥३६॥  
शत्रुघ्नोपि महातेजा बालकैः सह चागतः।  
विवेश भवनं प्रेष्णा लसल्लक्ष्मणं पृष्ठतः॥३७॥

आजगमतुस्तयो धात्र्यौ वालनारिभिरावृते।  
राजा दशरथो मग्नः सुखसिंधौ महामनाः॥३८॥

पुत्रैश्च शुशुभे राजा प्रजापतिरिवापरः।  
नरेन्द्रदारा स्पृहणी च शीलाः नृपोपकर्णं त्रिशतानि जग्मुः।  
पुनः शतार्ह्दि द्विजचेटिकाभिर्विलोकितुं क्रीडनकं शिशूनाम्॥३९॥

राजा राजाजिरभूमिमध्ये सिंहासनस्थो निजसुन्दरीभिः।  
यथा हि स्वर्गे भगवान् विडौजाः दिव्याप्सरोभिश्चपुलोमजायाः॥४०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे राजा राजपुत्रसहगमनो नाम  
तृतीयोऽध्यायः।

□ □

## चतुर्थोऽध्यायः

शैनक उवाच-

कथ्यतां कथ्यतां तूर्णं रघूनां चरितं शुभम्।  
मनो मे त्वरिते सूतं कथापानाय सादरम्॥१॥

सूत उवाच-

अथ भूपो महाबाहुः शिक्षयामास कैकेयीम्।  
भो देवि भवने सर्वाः सपत्न्यस्तव संगताः॥२॥

पूजयस्व प्रहाभागे मालाचन्दनबीटकैः।  
श्रुत्वा तु भूपतेर्वाक्यं सुस्मितं जग्रहे स्मिता॥३॥

संस्थिताश्यः पुनर्देवी चन्दनं मलयोद्भवम्।  
मालां पुष्पमर्यां रम्यां ताम्बूलं क्रमुकैर्युतम्॥४॥

स्थलपद्मारसं दिव्यं ददौ राज्ञी प्रहर्षिता।  
स्थितासु तासु सर्वासु राजा दशरथो वशी॥५॥

पुत्रान् सर्वान् समादाय जगाद निजयोषितः।

श्रीराजोवाच-

शृणुध्वं सकलाः देव्यो युष्माकं पुण्यतो बलात्॥६॥

जाताः कुमारकाः शुद्धाः मम वंशविवर्द्धनाः।  
समीचीनासु नारीषु येषां पुत्राः न जन्मिरे॥७॥

तेषां तु पितरः सर्वे औदासीन्येन संस्थिताः।  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पुत्रमुत्पादयेन्नरः॥८॥

महां तु ब्राह्मणैर्दत्ताः कुमाराः कुलभूषणाः।  
येषु तुष्टा न भूदेवास्तेषां जन्म गतं वृथाः॥९॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधुं विप्रांश्च तोषयेत्।  
येषां पादोदकं पीत्वा धूतपापो भवेन्नरः॥१०॥

भवतीनां कुमारा वै लालनीया न संशयः।

श्रीसूत उवाच-

क्षितीशस्य तु तद्वाक्यं निशम्य परमास्त्रियः॥११॥

ऊचू राममनस्कास्ताः राजानं पृथिवीपतिम्।

श्रीराजपत्न्यः ऊचुः

त्वं तु राजन् धर्ममूर्ति नास्ति त्वत् सदृशो भुवि॥१२॥

अस्माकं प्राणतुल्याश्च सर्वेषां पुरवासिनाम्।

भूयादेषां विवाहो वै श्रीरङ्गस्य प्रसादतः॥१३॥

वध्वा सह तदा राजन् द्रक्ष्यामस्तवपुत्रकान्।

यदा रामं गजस्थं च सितछत्रेणशोभितम्॥१४॥

यान्तं राजपथेनैव प्रकीर्णाभ्यां च वीक्षितम्।

द्रक्षिष्व्यामो महाराज तदा जन्मभृतो वयम्॥१५॥

सूत उवाच-

मन्थरेति च कैकेय्या दासी मन्थरगामिनी।

मन्थरं कर्म तस्यास्तु जनमन्थरकारिणी॥१६॥

वाक्यं श्रुत्वा नरेशस्य पत्नीनामतिचुक्रुधे।

उवाच कैकेयीं मन्दा त्रिवक्रा क्रूरगामिनी॥१७॥

मन्थरेवाच-

अत्रागच्छ महाभागे मुरुधे सौन्दर्यगर्विते।

पूर्ववृत्तं न जानासि मत्ता क्रीडसि मन्दिरे॥१८॥

मन्थराया वचो श्रुत्वा कैकेयी सुस्मिताभवत्।

उवाच मधुरं राज्ञीः कौशल्याप्रमुखास्तदा॥१९॥

श्रीकैकेयुवाच-

कुञ्जाकारयते सुभू अहं गच्छामि तां प्रति।

वीक्षते किल रक्ताभ्यां वक्राभ्यां वक्रगामिनी॥२०॥

सूत उवाच-

इत्युक्ताथ जगामाथ वादयन्तीं च मेखलाम्।

आज्ञां प्राप्य सप्तलीनां मन्थरा यत्र तिष्ठति॥२१॥

मन्थरा द्विज कैकेय्याः पाणिना पाणिमगृहीत्।

प्रासादं रुहे कुञ्जा निःश्वसन्ती सगौर्भरात्॥२२॥

तत्रारुह्य निविष्टा च कम्बले परमाद्भुते।  
मन्थरा वीटकान् कृत्वा खादयामास कैकेयीम्॥२३॥  
पुनस्तु वीजयामास चामरेण सुशोभिना।  
रत्नदण्डेन शुभ्रेण मन्दमन्दं तु मन्थरा॥२४॥

श्रीकैकेयुवाच-

मन्थरे ब्रूहि शीघ्रं त्वं हृदगतं कारणं हि मे।  
यदर्थं मामिहानीय नृपपत्नीसमूहतः॥२५॥

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा च कैकेयाः वाक्यं परमशोभनम्।  
जगाद तर्जनीं कृत्वा ओष्ठस्योपरि मन्थरा॥२६॥

मन्थरोवाच-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कथां च परमाद्भुताम्।  
प्रवदन्ति स प्रेष्णो हि रामराज्यं भविष्यति॥२७॥  
तदा वयं जन्मभूतो भविष्यामो न संशयः।  
इत्यासां नृपदाराणां वचनेन स्मृतिरागता॥२८॥

विवाहस्य च सुश्रोणि तत्र राज्ञो घटस्तनी।

श्रीकैकेयुवाच-

कीदृशं खलु मे वृत्तं विवाहस्य च मन्थरे।  
राज्ञः प्रिया कथं जाता कथं चोद्वाहिताह्यम्॥२९॥

इति श्री सत्योपाख्याने मन्थराकैकेयीसंवादो नाम  
चतुर्थोऽध्यायः

□ □

## पञ्चमोऽध्यायः

मन्थरोवाच-

एकदा ब्रह्मपुत्रस्तु नारदो मुनिसत्तमः।  
वादयन् महतीं वीणामयोध्यां प्राविशन्मुनिः॥१॥  
राजा दशरथस्तं हि पूजयामास भक्षितः।  
सिंहासने महादिव्ये सन्निवेश्य यथाविधिः॥२॥

श्रीदशरथोवाच-

करम्पाञ्जनपदाद् विप्र प्राप्तोऽसि मम चालयम्।  
पावयन् सकलान् लोकान् पादैरटसि सूर्यवत्॥३॥  
पाताले स्वर्गलोके वा ब्रह्मलोके तथा क्षितौ।  
किं चित्रं वर्तते विप्र सत्यं कथय मे प्रभो॥४॥

श्रीनारदोवाच-

ब्रह्मलोकादहं प्राप्तं पृथिवीं शृणु भूपते।  
सर्वे विलोकिता देशा नरनारीभिः पूरिताः॥५॥  
प्रयागश्च मया दृष्टः पुरी काशी विलोकिता।  
काञ्ची विलोकिता राजन् तथावन्ती विलोकिता॥६॥  
आनर्ताश्च मया दृष्टास्तथा मधुपुरी शुभा।  
एतेष्यन्येषु मे दृष्टा मया नार्यः सुमध्यमाः॥७॥  
अथा दृष्टा मया राजन् कन्या केकयभूपते।  
नैव देवी न गन्धर्वं यथा सा किल वर्तते॥८॥  
अहमश्वपते राजन् गृहं गत्वा विलोकिता।  
तस्या हस्ते मया दृष्टा रेखा हस्तगता यथा॥९॥  
तां दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय प्राप्तोऽस्मि च तवान्तिकम्।  
तस्या पाणिं च गृहीच्च यत्नेन खलु भूमिपः॥१०॥

तस्या पुत्रो यशस्वी च महाज्ञानी महातपा।  
 भविष्यति महाराज तव पुत्रो न संशयः॥११॥  
 श्रावयित्वा तु राजानं देवर्थिः परमद्युतिः।  
 ब्रह्मलोकं ययौ धीमान् नृपमामन्त्रं सुन्दरी॥१२॥  
 राजा दशरथस्त्वं हि रूपेण प्रतिमां भुवि।  
 श्रुत्वा शुशोच लाभाय कथं प्राप्त्यामि ता स्त्रियम्॥१३॥  
 तत्रागता नरेन्द्रस्य समीपे देवयोगिनी।  
 तया पृष्ठो महाराज किं त्वं व्यायसि भूमिपः॥१४॥  
 अश्वाः गजाश्च मातङ्गास्तव सन्ति शुभाः शुभाः।  
 पत्तयस्ते तु सामन्ताः परसामन्तदारणाः॥१५॥  
 राजन् राज्यस्तवस्फीतं प्रतापहतकण्टकम्।  
 पत्न्याः सप्तशतार्द्धानि वर्तन्ते रतिमूर्तये॥१६॥  
 प्रेसयशो महाबाहो देवविस्मयकारकः।  
 एतत् सर्वं हिते राजन् किं त्वं शोचसि दीनवत्॥१७॥

श्रीराजोवाच-

इदानीं नारदो देवी स्वागतो मम सन्निधौ।  
 तेन रूपं हि कैकेय्या महां सर्वं निवेदितम्॥१८॥  
 कथं प्राप्त्याम्यहं तां वा इति शोचामि पण्डिते।  
 यदि दूतो मया भद्रे प्रेषितव्यो नृपान्तिके॥१९॥  
 जना सर्वे प्रहास्यं करिष्यन्ति न संशयः।  
 कथं राजा रघूनां च विवाहे स्वयमुद्यतः॥२०॥  
 धर्मात्मा सत्यसन्धश्च वृद्धानां पर्युपासकः।  
 कामकारेण वर्तन्ते राघवो धर्मतत्परः॥२१॥  
 बोधितो नारदेनाहं विवाहार्थं तथा सह।

सूत उवाच-

नरेन्द्रस्य च तद्वाक्यं निशम्य प्राह योगिनी॥२२॥  
 मोहिनी नरनारीणां रूपिणी जनहारिणी।

योगिन्युवाच-

प्राप्त्यामि महाभाग कैकेयीं तव सन्निधौ॥२३॥

धैर्यं कुरु महीपाल दूतभावे मयि स्थिते।  
 मोहयिष्यामि गन्धर्वा देवीं वा किमु मानुषीम्॥२४॥  
 परन्तु श्रुणु काकुत्स्थ सतां धर्मो न ईदृशः।  
 छलते परदारान् यः परकन्यांश्च यो नरः॥२५॥  
 स घोरं नरकं यान्ति ताडितो यमकिङ्करैः।  
 तस्मात् तस्यास्त्वया सार्द्धं विवाहार्थं यताम्यहम्॥२६॥

संगरोवाच-

राजा सभाजिता सापि यथौ शीघ्रं च योगिनी।  
 देशान् जनपदान् रम्यान् मनसो मोहकारकान्॥२७॥  
 वनानि रमणीयानि सेवितानि मतङ्गजैः।  
 नदीश्च विविधाकारास्तरङ्गावर्तभीषणाः॥२८॥  
 सा हि स्वल्पेन कालेन प्राप्ता कैकयपत्तनम्।  
 दृष्ट्वा सा नगरं प्राप्ते सरः पङ्कजमण्डितम्॥२९॥  
 चतुरसं च सोपानैः शोभितं स्फटिकोपमैः।  
 चक्रवाकैस्समाकीर्णं हंससारसमण्डितम्॥३०॥  
 लक्ष्मणाभिः सदापूर्णं वरटाभिश्च शोभितम्।  
 निष्ठङ्कं निर्मलं स्वच्छं साधूनामिव मानसम्॥३१॥  
 प्रफुल्लैः शतपत्रैश्च राजितं भ्रमरान्वितैः।  
 एवं विधं सरो दृष्ट्वा चकार मतिमीदृशीम्॥३२॥  
 अत्राहं कुटजं कृत्वा वसाम्यस्मिन् सरोवरे।  
 कायक्लेशं करिष्यामि ह्यात्मप्रारब्धकारणात्॥३३॥  
 अत्र सर्वजनो नित्यं स्नातुमायाति पत्तनात्।  
 अत्राप्यश्वपते: कन्या निश्चयेनागमिष्यति॥३४॥  
 तया सार्द्धं च संवादो मम चात्र भविष्यति।  
 तया नीता ह्यहं रम्यमवरोधं च भूपते॥३५॥  
 द्रक्ष्ये कैकयराजं च तदा कार्यं भविष्यति।  
 इति सा निश्चयं कृत्वा चोवास सरसस्तटे॥३६॥

नागरैः पूज्यमाना च नारीभिश्च विशेषतः।  
 त्वमपि स्नातुमायाता त्वया पृष्टापि तापसी॥३७॥  
 त्वं च देवि न जानासि चतुरा शुभ्रमात्मनः।  
 अथवा विस्मृतं भद्रे स्यात्मव्याचरितं हि यत्॥३८॥  
 मया न विस्मृतं रामे कथा तव प्रिया मम।  
 त्वां दर्दर्श समीपस्थां पूर्णेन्दुसदृशाननाम्॥३९॥  
 सुनेत्रां सुष्ठुदशनां सुललाटां शुचिस्मिताम्।  
 स्वर्णसूत्रेण सुप्रोतो मुक्तां च नसि विभ्रतीम्॥४०॥  
 वेणी कामकशाकागां मुक्तादामेन भूषिताम्।  
 कन्दर्पस्य यथार्पणं तादृशं भुजयोद्द्वयम्॥४१॥  
 कुचौ च निविडौ पीनौ वर्तुलौ श्रीफलोपमौ।  
 नाभीहृदं च गम्भीरं जघनं मेखलायुतम्॥४२॥  
 ऊरुं रम्भौपमौ सुभू चरणो कमठपृष्ठभौ।  
 एवं विधां हि कामस्य कान्ता रतिमिवापराम्॥४३॥  
 सुतामश्वपतेज्ञात्वा लेभे सा परमां मुदाम्।  
 त्वामुवाच शुभाचारा लक्षणज्ञा विशारदा॥४४॥

योगिन्योवाच-

स्वर्गलोको मया दृष्टस्तथा स्वर्गभवास्त्रियः।  
 भूमेरधोमयाः लोकाः सर्वे दृष्टाः मनोहराः॥४५॥  
 ईदृशी न मया कन्या देवानां न विलोकिता।  
 गन्धर्वानां च नागानां रूपवतोऽप्सरसां तथा॥४६॥  
 अहो धामवयस्तेजो नृणां मोहकरं वपुः।  
 राजलक्षणसंयुक्ता राजपत्नी भविष्यति॥४७॥

मन्थरोवाच-

इत्युक्ता विररामाध योगिनी जनयोहिनी।  
 तस्याः वाक्यं च संश्रुत्वा मन्दहास्यं त्वया कृतम्॥४८॥  
 त्वया नीता गृहं प्राप्ना मातुस्ते परमाद्भुतम्।  
 मानिता राजभवने राजा मात्रा त्वया पुनः॥४९॥

प्रासादो परिवासस्तु दत्तस्तस्याः शुचिस्मिते।  
 एकदा त्वां जगादेति भाग्यं ते देवि विस्तृतम्॥५०॥  
 ईदृशस्ते पिता देवि जननीशीलरूपिणी।  
 गृहं च परमाश्चर्यं दासीदाससमाकूलम्॥५१॥  
 आल्यस्तव महादिव्याः कामस्य पृतना इव।  
 भ्राता ते बलीयान्वै पितृमातृयशस्करः॥५२॥  
 किं बहूक्तेन थो देवि नास्ति काचित् त्वया समा।  
 पृथिव्या सागरान्ताया राजा भर्ता भवेद् यदि॥५३॥  
 तर्हि रूपस्य साफल्यमन्यथा व्यर्थमेव हि।  
 विरराम प्रवीणा सा योगिनी जनमोहिनी॥५४॥

इति श्रीसत्योपाख्याने मन्थराकैकेयीसंवादे  
 पञ्चमोऽध्यायः।

□ □

## षष्ठोऽध्यायः

मन्थरोवाच-

ईदृशं वचनं तस्याः श्रुत्वा त्वं विस्मयं गता।  
पुनस्त्वया च सा पृष्ठा तत् सर्वं कथयामि ते॥१॥

कैकेय्युवाच-

अटन्ति पृथिवीं मातः साधवो धर्मविग्रहाः।  
सुशीला शान्तरूपाश्च परकार्यरता सदा॥२॥

हरिध्यानरताः सर्वे परोपकृतिनस्तथा।  
प्रपन्ना पादमूले ते विष्णोः नारायणस्य हि॥३॥

त्वमप्येतादृशी भद्रे लोके चरसि सर्वदा।  
तस्माद्योजय त्वं पत्या सर्वलक्षणशोभिना॥४॥

महावीरेण शुभ्रेण राजसिंहेन मानिना।  
धर्मज्ञेन सुशीलेन प्रतापहतशत्रुणा॥५॥

सर्वलक्षणयुक्तेन किं बहूक्तेन योगिनी।

सूतोवाच-

निशम्य वाक्यं कैकेय्या उवाच शुभया गिरा।  
स्ववाक्यवशगां ज्ञात्वा कैकेयीं रुचिराननाम्॥६॥

योगिन्युवाच-

विश्वासो यदि रम्भोरु ममोक्तौ च वरानने।  
वदामि तुभ्यं राजानं देवासुरनर्नतम्॥७॥

विद्यते नगरी दिव्या देवासुरनर्नता।  
अयोध्या नाम विष्णुता विष्णोऽन्नं पुरी शुभा॥८॥

वसन्ति यस्यां देवाश्च किनराः सिद्धचारणाः।  
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्च धर्मतप्तराः॥९॥

गृहस्थाः वानप्रस्थाश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः।  
 स्त्रियश्चरति रूपिण्यो नराश्च कामरूपिणः॥१०॥  
 सरवूतटिनी यत्र राजते जलजैर्युता।  
 हंसकारण्डवैर्युक्ता चक्रवाकैरलङ्घक्ता॥११॥  
 सोपानैर्विविधाकारैर्नानारलविचित्रतैः।  
 प्रासादैः सर्वदेवानां शोभते मानसोद्भवा॥१२॥  
 यस्याः दर्शनमात्रेण पापहानिः परं भवेत्।  
 तस्याः पुर्यस्तु भूपालो नामा दशरथो महान्॥१३॥  
 चक्रवर्ती महाबाहुः नृपाणां मुकुटो मणिः।  
 रक्षिता सर्वधर्माणां ज्ञानिनां पर्युपासकः॥१४॥  
 धर्मात्मा सत्यसन्धश्च राजराजश्च शत्रुहा।  
 महेन्द्र इव दुर्धघस्तेजसाग्निरिवापरः॥१५॥  
 गिरीश इव प्रासादे सहिष्णुः पितराविव।  
 बृहस्पतिसमो ज्ञाने सौन्दर्ये मन्मथोपमः॥१६॥  
 दोर्दण्डकृतनादेन धनुषा रिपुदर्पहा।  
 ईदृशो यदि ते भर्ता भवेत् श्यामे सुलोचने॥१७॥  
 कुचयोस्तव साफल्यं हे देवि कठिनस्तनि।

सूत उवाच-

कैकेयी वचनं श्रुत्वा योगिन्याः मनसः प्रियम्॥१८॥  
 अवदद् योगिनीं श्यामा मन्दसस्मितभाषिणी।

कैकेय्युवाच-

नारदस्तु महायोगी एकदा मम सन्निधौ॥१९॥  
 वब्रे गुणांस्तु भूपस्य राज्ञो दशरथस्य च।  
 तस्माद् दिनाद्विं मे चेतस्तस्मिन् भूपे च वर्तते॥२०॥  
 त्वम्मुखाच्च पुनः श्रुत्वा उत्कण्ठा महती मम।  
 केनोपायेन भूपस्तु कथं मम धवो भवेत्॥२१॥  
 उपायं बूहि मात्रमें येन सः प्राप्यते मया।

योगिन्युवाच-

समीचीनमुपायं च हौदासीन्येन मन्दिरे॥२२॥

तिष्ठस्व धैर्यसंयुक्ता तदा कार्यं भविष्यति।  
 सुता केकयराज्ञस्तु योगिन्या उपदेशतः॥२३॥  
 हृदि कृत्वा महाराजमादासीन्ये हृबत्ततः।  
 भोजनं नाकरोत् प्रेम्णा पिपासं न जले तथा॥२४॥  
 न ददर्श सखीः पाश्वें ताम्बूलं न च खाद वै।  
 न देहं गृह्यामास वस्त्रेण सा वरानना॥२५॥  
 मुहुर्मुहोच हिक्कां च न सुश्राव जनोदितम्।  
 अनागसं चुकोपाथ नर्तनं न ददर्श सा॥२६॥  
 तस्याः आल्यश्च तां दृष्ट्वा जग्मुः शीघ्रं च मात्रम्।  
 आहुश्च वचनं प्रेम्णा कैकेय्याः जननीं प्रति॥२७॥

आल्यः ऊचुः -

पश्य पश्य महाभागे स्वसुतां विकृतिं गताम्।  
 भोजनग्रहणे चेतो देहस्य न हि वर्तते॥२८॥  
 यदा प्रभृति ते गेहं योगिनी दारमोहिनी।  
 आगता शाङ्करी माया मूर्त्ता किल नरेश्वरी॥३०॥  
 यदिदनात् सनिधौ तस्याः स्थितिः चक्रे तवात्मजा।  
 तद्विनाम्योहमापना न प्रसन्ना शुचिस्मिता॥३१॥  
 तस्या मुखाच्च भूपानां कथा सुश्राव चित्रधा।  
 कथाभिर्मोहयामास छलरूपा च योगिनी॥३२॥

श्री सूत उवाच-

सखीनां वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता।  
 युधाजितस्य सा माता महिषी केकयस्य तु॥३३॥  
 जगाम शीघ्रं कैकेय्याः समीपं वरवर्णिनी।  
 विलोक्य कैकेयीं म्लानां वचनं चेदमब्रवीत्॥३४॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने मंथराकैकेयीसंवादे षष्ठोऽध्यायः

□ □

## सप्तमोऽध्यायः

श्रीसूतोवाच-

का दशा तव हे पुत्रि किं चिकीर्षसि शंस मे।  
शरीरे तव का व्याधिस्तां यत्नैर्नाशयाम्यहम्॥१॥

श्रीकैकेयुवाच-

ममेयं प्रकृतिर्मातर्न चिकीर्षास्तिमानसे।  
किं करोमि न मे तृष्णा जायते सर्ववस्तुषु॥२॥

सूत उवाच-

युधाजितस्य सा माता योगिन्या अन्तिकं गता।  
जगाद् प्राव्जलिं कृत्वा स्तुवती परया गिरा॥३॥

का दशा मम कन्याया जाता तव समीपतः।  
श्यामायै न च वक्तव्यं राज्ञां च गुणविस्तरम्॥४॥

श्रवणेन मनो तासां तेष्वेव रमते स्फुटम्।  
तथैव सुन्दरीणां हि वर्णनं कामुकस्य तु॥५॥

पतिव्रताश्च या नार्यः न श्रृण्वन्ति परान् गुणान्।  
मनसो न हि विश्वासस्तस्मिन् गच्छति मानवे॥६॥

वशे कुर्वदुतिप्सतान् ( ? ) कथाभिश्चवधूजनान्।  
अथवा किं न जानासि लोकस्य चरितं त्विदाम्॥७॥

अथवा त्वं न जानासि तपस्यभिरता सदा।

योगिन्योवाच-

मया न ज्ञायते भद्रे लोकवार्ता शुभाशुभा॥८॥

मामपृच्छुभाचारा तव कन्या मनोहरा।  
के के देशास्त्वया दृष्टाः भूभुजः के महीतले॥९॥

इति पृष्ठा ह्यहं भाषे सुतरां रुचिराह्वचा।  
 तदावोचमहं भद्रे कथा दशरथस्य या॥१०॥  
 अयोध्या वर्णिता राज्ञि तथैव सरयू नदी।  
 अनया पृष्ठया भद्रे कथैव कथिता मया॥११॥  
 उच्चाटनं न जानामि मोहनं च विशेषतः।  
 अनायासेन मोहं सा प्राप्ता चन्द्राधिकानना॥१२॥

सूत उवाच-

योगिनीवचनं श्रुत्वा महिषी केकयस्य तु।  
 विवेश भवनं सुभू विस्मयाविष्टमानसा॥१३॥  
 रात्रौ समागतौ राजा शयनार्थं ततो द्विजाः।  
 कैकयाधिपती राजा राज्ञीं वचनमद्वीत्॥१४॥  
 वदनं ते ह्यतिम्लानं वर्तते केन हेतुना।  
 सत्यं कथय मे राज्ञि पादयोः शापिता मम॥१५॥

राज्ञोवाच-

विवाहं कुरु कैकेय्याः श्यामायास्त्वं च भूमिपः।  
 राज्ञा दशरथेनैव कौशलस्याधिपेन च॥१६॥  
 योगिन्या वर्णितं तस्यै चरितं तस्य भूपते।  
 तं निशम्य दिवानक्तं कन्याया रमते मनः॥१७॥  
 तस्मिंश्च रमते भूप तस्मा द्योन्या हि तेन सा।

राजोवाच-

तव वाक्यं करिष्यामि प्रातरेव न संशयः॥१८॥  
 कन्या शीघ्रं तु दातव्या वराय कुलशालिनो।  
 तयोश्च कुर्वतो वार्ता व्यतीता रजनी द्विजः॥१९॥  
 कृत्वा स्नानं च भूपस्तु प्राविशन् महतीं सभाम्।  
 उपविष्टे महीपाले सभाजमुः सभासदः॥२०॥  
 मन्त्रिणश्च तथा सर्वे सभां प्राप्ता अनेकशः।  
 राजानं च नमस्कृत्य विविशुः स्वं स्वमासनम्॥२१॥  
 राज्ञः पुरोहितो धीमान् नामा गर्गो महामतिः।  
 राज्ञः समीपं सः प्राप्य छत्रैः परिवृतो द्विजः॥२२॥

पूजयामास राजा तु द्विंशं क्षत्रियपुङ्गवः।  
 पीठे निवेशयामास गर्गं रत्नविचित्रिते॥२३॥  
 क्षितिपालस्य ते सर्वे आदधु दृष्टिमानने।  
 प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वान् मुख्यान् राजपरिगृहे॥२४॥

राजोवाच-

साकेतनगरे राजा नाम्ना दशरथो बली।  
 तस्मै देया मया कन्या कैकेयी नामतो जनाः॥२५॥  
 यदि रोचते मद्वाक्यं क्रीयतामवलम्बितम्।

सूत उवाच-

इति वाक्यं नरेशस्य श्रुत्वा सर्वजनोब्रवीत्॥२६॥  
 नादयन्त्या गिरा गेहं क्षितीशं धर्षतत्परम्।

जनसमूह उवाच-

समीचीनं समीचीनं वचनं ते नरेश्वर॥२७॥  
 कन्या तस्मै प्रदातव्या सूर्यवंशध्वजाय सा।  
 इति प्रब्रुवतां तेषां मन्त्री चैक उवाच वै॥२८॥  
 श्रूयते खलु वृद्धो हि राजा दशरथः कृती।  
 पुरञ्च्छः सन्ति ब्रह्मश्च तस्य राज्ञो महीपतेः॥२९॥  
 कथं देया ह्यपुत्राय बहुपत्नियुताय च।

सूत उवाच-

तदा प्रोवाच गर्गस्तु विप्रो राजपुरोहितः।  
 श्रोतव्यं वचनं सर्वैरिति मे प्रेमतो जनाः॥३०॥

गर्ग उवाच-

कैलासे पर्वते श्रेष्ठे अलका नाम वै पुरी।  
 नन्दया गङ्गया रम्यावृता चालकनन्दया।  
 तस्यां वसति वै राजा कुबेरो धनपालकः॥३१॥  
 तेन यज्ञं कृतं पूर्वं श्रीहरेः प्रीतिकाम्यया।  
 तत्राजग्मुः सुरगणाः ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः॥३२॥  
 तथा ऋषिगणाः सर्वे यज्ञे च धनदस्य च।  
 आजगाम शिवो यत्र पार्वत्या नन्दिना सह॥३३॥

पुत्राभ्यां सहितो देवो गणेशेन गुहेन च।  
 शिवं निवेशयामासुः सभामानम्यते जनाः॥३४॥  
 धनपालस्य यज्ञस्तु बभूव परमाद्भुतम्।  
 निर्विघ्नेन समाप्तस्तु यज्ञोयं धनदस्य च॥३५॥  
 नोपद्रवः कृतः सत्रे रावणस्य हि राक्षसैः।  
 इति सर्वे जना चैवं पप्रच्छु गिरिजापतिम्॥३६॥

जनाः ऊचुः-

गङ्गाधर महादेव प्रलये प्रलयङ्गर।  
 सर्वं जानासि देवेश भूतं भव्यं भवत् प्रभो॥३७॥  
 रावणो राक्षसैः सार्द्धं कदा नाशं व्रजिष्यति।  
 देवर्षिपितृभूतानां सर्वोपद्रवकारकः॥३८॥

जगदीश्वर उवाच-

शृणुध्वं सकला देवाः भविष्यचरितं महत्।  
 अयोध्यायां महापुर्या राघवो वरीवर्ति हि॥३९॥  
 तस्य पल्ली सुमित्रा च कौशल्या भानुमन्तजा।  
 अपरा कैकेयी नाम्ना तथान्याश्च महात्मनः॥४०॥  
 तासु पुत्राः भविष्यन्ति चत्वारः परमाद्भुताः।  
 नाम्ना रामश्च शत्रुघ्नो लक्ष्मणो भरतस्तथा॥४१॥  
 सर्वलोकस्य कर्तारस्ते कोशलकुमारकाः।  
 उपास्या द्विजदेवानामस्माकं विश्वभावनाः॥४२॥  
 तेषां मध्ये च यो रामो भ्रातृणां ज्येष्ठ एवं सः।  
 पितुराजां पुरस्कृत्य वनं रामो गमिष्यति॥४३॥  
 पुत्रपौत्रादिकैः सार्द्धं रावणं स वधिष्यति।  
 स्वस्था भवन्तु भो देवाः मा चिन्तां क्रियतां हृदि॥४४॥

गर्ग उवाच-

इति वृत्तमहं यज्ञे हृशीषं त्र्यम्बकात् पुरा।  
 तस्मादिक्ष्वाकवे देया कन्येण हे सभासदः॥४५॥

राजोवाच-

सम्यगुक्तं त्वया ब्रह्मनिदं वृत्तं महामते।  
 कन्या तस्मै प्रदास्यामि नररत्नाय भो गुरो॥४६॥

गत्त्वायोध्यां प्रकर्तव्यो विवाहस्तु त्वयानघः।  
 कैकेय्या तस्य भूपस्य समयेन महामते॥४७॥  
 समयस्त्वीदृशो विष्र धार्यतां प्रवदामि ते।  
 कैकेय्यां मम पुत्रां तु राज्ञः पुत्रो भविष्यति॥४८॥  
 तस्मै राज्यं प्रदेहि त्वं समयेनानेन गृह्णताम्।  
 एवं कृत्वा त्वयां विष्र देया कन्या नृपाय वै॥४९॥

गर्ण उवाच-

गमिष्यामि महाराज नगरं प्रति भूभुजम्।  
 विवाहं कारणिष्यामि पुत्रास्ते समयेन तु॥५०॥

सूत उवाच-

राजाज्ञपतस्तु स क्षिप्रः प्रतस्थे विमलां प्रति।  
 फलदानं त संगृह्य विष्रः नागरिकैश्च सह॥५१॥  
 श्रुश्राव कैकेयी वृत्तमिति प्रोवाच योगिनीम्।

कैकेय्युवाच-

हे योगिनि महामाये गृहीष्व वचनं मम॥५२॥  
 गच्छायोध्यां पुरीं रम्यां राजानं बूहि महशाम्।  
 यथा गृह्णाति मां भूपो दासी तव भवाष्यहम्॥५३॥  
 गर्णो याति विवाहार्थं मम त्वं गच्छ चाग्रतः।  
 कैकेयीवचनेनैव विज्ञाप्य सकलाजनान्॥५४॥  
 योगिनीं विमलां प्राप्य गर्णादग्रे द्विजोत्तम।  
 चरितं वर्णयामास ह्यात्मना यदनुष्ठितम्॥५५॥  
 राजा मुमोद तत् श्रुत्वा ध्यायन् गर्णस्य वागमम्।  
 एवं काले प्रयाते च ह्योध्यां प्राप्य वै मुनिः॥५६॥  
 राजा तु निर्ययौ विष्रं गृहीतुमग्रतो द्विजैः।  
 प्रणम्य पादौ विष्रस्य पाद्यमर्थं ददौ नृपः॥५७॥

श्रीराजादशरथ उवाच-

साम्भ्रतं जन्म सफलं जातं मम त्वया द्विज।  
 दिष्ट्या मूर्ध्ना मया पादौ स्पृष्टौ ते दुरितक्षयौ॥५८॥

अनुकम्पा मे विग्राणां दासे दीने कृता त्वया।  
 ब्राह्मणा हरिभक्ताश्च भूतेषु सुहदं सदा॥५९॥

भूव्यटन्ति महात्मानः पुनातो निखिलं जगत्।  
 ईश्वाकूनामहं धन्यस्तवदर्शनिकारकः॥६०॥

प्रवेशं कुरु हे विप्र रथूनां भवनेषु च।  
 अयोध्येयं पुरी धन्या यत्र प्राप्तो भवादृशः॥६१॥

वैष्णवा ब्राह्मणाश्चैव गेहे देशे च पत्तने।  
 यत्र यत्र न वै यान्ति व्याघ्रक्लोष्टुगृहाश्च ते॥६२॥

पुनीहि पादयोः धूल्या तस्माच्चेदं गृहं यम।  
 स्तुत्वा चैवं मुनिं गृह्य ब्राह्मणैः सह राजराट्॥६३॥

गृहं प्रवेशायामास विधिना विहितेन च।  
 गर्गस्तु मन्दिरं प्राप्य ददर्श महर्तीं श्रियम्॥६४॥

जहर्ष मतिमान् विप्रो दृष्ट्वा राज्ञो महोदयम्॥६५॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे श्री राजागर्गसमागमे नाम  
 सप्तमोऽध्यायः।

□ □

## अष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ दशरथो राजा यद्याचे भोजनायतम्।  
चतुर्विंधं सुपक्वानं भुञ्यतां ब्राह्मणैः सह॥१॥

गर्गोवाच-

तव संदर्शनादेव छिन्नो मे सर्वसंशयः।  
यस्माद् ब्रवीषि धर्मं त्वमिक्षवाकूनां महारथः॥२॥

मनुः प्रभृतिः राजानः सूर्यवंशनरेश्वराः।  
पूजिताश्चार्थिनो यैस्तु दानैर्मानैर्विशेषतः॥३॥

रघूनां हृदयं नैव प्रापुरन्याः किलास्त्रियः।  
पृष्ठं न लेभिरे युद्धे रिपवः शस्त्रपाणयः॥४॥

वाणी न शक्यते स्तोतुं रघुवंशनरेश्वरः।  
रघूनां यशसा व्याप्तं भूगोलं वर्तते नृप॥५॥

देवलोके च गायन्ति देवकन्यासहस्रशः।  
यशस्तव महाराज पाताले नागकन्यकाः॥६॥

यशसा तव हे राजन् कर्णों पूर्णो ममानघ।  
न त्रयोः सकलार्थाय सन्निधिस्ते जनाधिप॥७॥

आशया चागतो राजन् अहं दूरात्तवान्तिकम्।  
पूर्णा कुरु ममाशां च वदान्यानां शिरोमणिः॥८॥

तदा भुञ्जे महाराज तवानं प्रीतमानसः।  
निशम्य च मुनेर्वाक्यमब्रवीत् स नरोत्तमः॥९॥

ध्यायन् च योगिनीवाक्यं श्रीर्गां कौशलाधिपः।

श्रीदशरथोवाच-

कथयस्व महाभाग वाञ्छितं आत्मनः शुभम्॥१०॥

तथैवाहं करिष्यमि यथाज्ञा द्विज जायते।  
किं बहुवतेन ते कार्यं प्राणौरथैश्च साधये॥१॥

गर्गोवाच-

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण काश्मीरस्याधिपेन च।  
तुभ्यं दास्यति कन्या स समयेन नराधिपः॥१२॥  
समयं शृणु भो राजनिति तस्य महीपतेः।  
कैकेय्यां मम कन्यायां यस्तु पुत्रो भविष्यति॥१३॥  
तस्मै राज्यं ददात्वेवं गृह्णातु मम कन्यका।  
अनेन समयेनापि विवाहं कुरु भूमिप॥१४॥  
अद्य प्रोक्तं त्वया चैव प्राणौरथैश्च साधयेत्।  
इति प्रोक्तं त्वया, मह्यमिदानीं क्रियतां नृप॥१५॥

सूत उवाच-

राजा निशम्य तद्वाक्यं मनस्येतद् विचारयत्।  
किमयं कथ्यते विप्रो मनसो भ्रमकारकम्॥१६॥  
विवाहस्तु ममाभीष्टो पुत्रे राज्यसमर्पणम्।  
यदि चेन्ममपुत्राश्च भविष्यन्ति ह्यपुत्रिणः॥१७॥  
ते चापि स्वस्य वंशस्य मर्यादां च कुमारकाः।  
न त्यक्षति महात्मान आदाविक्ष्वाकुना कृतम्॥१८॥  
हृदि निश्चित्य राजा च वशिष्ठादिभिरात्मवान्।  
निश्चयं चात्मनः कृत्वा गर्गमाह कृताङ्गलिः॥१९॥  
यथा वदसि भो विप्र तथैव करवाण्यहम्।

सूत उवाच-

गर्गस्तु भोजनं चक्रे अनेन समयेन च॥२०॥  
राज्ञा दशरथेनापि जामे कैकयपत्तनम्।  
अयोध्यां मन्त्रिषु न्यस्य विवाहार्थं महावृत्तिः॥२१॥  
काश्मीरदेशपालेन पूजितः परमार्हणैः।  
चकार ग्रहणं पाणे: कैकेय्याः राजपुङ्गवः॥२२॥  
काश्मीरस्य पतिः प्रीतः पारिवर्ह ददौ मुदा।  
चक्रीवतस्कगन्धर्वान् कम्बलान्यजिनानि ( च )॥२३॥

गृह्य मन्थरया साकं कैकेयां नृप आत्मजाम्।  
 विवेश विमलां प्रीतो वृतः सैन्यैर्महाबलैः॥२४॥  
 रेमे राजा तथा साद्वं संवत्सरगणान् बहून्।  
 पौलोम्या च यथा देवः अयोध्यायां तथा नृपः॥२५॥  
 चकार विविधां क्रीडां पत्न्येव गुह्यकेश्वरः।  
 ईदृशो नहि राजासीदन्ये ये सोमसूर्ययोः॥२६॥

मन्थरोवाच-

वर्णितं ते मया भद्रे विवाहं तु मनोहरम्।  
 अनेन समयेनापि स्मारितं ते सुलोचने॥२७॥  
 कि वदन्ति सपत्न्यस्तु विस्मृत्य समय तव।  
 यदि रामस्य राज्यं च यौवने च भविष्यति॥२८॥  
 तदा वयं निरुत्साहाश्चेटिकास्ते भवेमहि।

सूत उवाच-

निशम्य वाक्यं कुब्जायाः कैकेयी चास्मितानना॥२९॥  
 कर्णे स्थितेन पद्मेन निघननी प्राह मन्थराम्।

कैकेयुवाच-

कर्मणा त्वं च जानामि दैत्यकन्यां च मन्थरे॥३०॥  
 ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता।  
 जिह्वा च छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनी॥३१॥  
 नेत्रयोः पातनं चैव नासिकायाः विशेषतः।  
 इदं पापसमूहं ते स्थगुरुपेण वर्तते॥३२॥  
 पृष्ठोपरि महापापे श्रीरामे लूरदर्शिनी।  
 पुनर्जघान पद्मेन मन्थरां चारुहासिनी॥३३॥

सूत उवाच-

घटिकान्तरमात्रेण राजा दशरथो द्विज।  
 उवाच शत्रुहन्तारं तात (आ-) कारय कैकेयीम्॥३४॥  
 सौधस्थितां च हे पुत्र गृहीत्व हस्तमानय।  
 पत्न्या सर्वा स्थिता यत्र किं करोति कैकेयी॥३५॥

सूत्र उवाच-

शत्रुघ्नः सखिभिः साद्वं प्रासादं करकन्दुकः।  
आरुरोह महावीर्यो मातुराक्षारनाय वै॥३६॥  
मातरं वीक्ष्य शत्रुघ्नः प्रोद्वाच कलन्दुपुरः।

शत्रुघ्नोवाच-

अम्बाम्बा गच्छ भो मात हृष्टो मन्थरया सह॥३७॥  
राजाकारयते त्वां च गन्तव्यं तत्र वै त्वया।  
इत्युक्त्वा हस्तमाकृष्योत्थापयामास कैकेयीम्॥३८॥  
शत्रुघ्नो रिपुवीरघ्नो महावीरो महाबाली।  
कैकेय्याः शाटिकान्तं च प्रकृष्य मन्थराक्षवीत्॥३९॥  
पुनश्च श्रूयतां भद्रे मद्वाक्यं प्रेमतः प्रिये।  
शत्रुघ्नस्य सखायस्तु मन्थरां वाक्यमद्वीत्॥४०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे  
अष्टमोध्यायः।

□ □

## नवमोऽध्यायः

बाल उवाच-

मुञ्च मुञ्च त्रिवक्ते त्वं भरतस्य च मातरम्।  
 मन्थरा चोत्थिता कोपाञ्जनौ हस्तं निधाय च॥१॥  
 भर्त्सयामास सा बालानङ्गुलिभङ्गं च कुर्वती।  
 शीघ्रं तताड शत्रुघ्नो तावतस्याश्च कूबरे॥२॥  
 पपात मन्थरा भूमौ हाहाशब्दं च कुर्वती।  
 शत्रुघ्नेषि महावीर्यो जहास बालकैः सह॥३॥  
 हस्ताङ्गुली च कैकेय्याः गृहीत्वा पितुरन्तिके।  
 निनाय मातरं बालाः जहास मन्थरां प्रति॥४॥  
 मन्थरा चाययौ तत्र स्खलन्ती च पदे पदे।  
 राज्ञः पपात सा चाग्रे कराभ्यां निघती स्तनौ॥५॥  
 शत्रुहा बालकैः सार्द्धं दुद्राव सदनाद् बहिः।  
 मन्थरां रुदतीं दृष्ट्वा भूपाग्रे निघती शिरः॥६॥  
 सोपालभ्मिदं वाक्यं जगाद मन्थरा नृपम्।

मन्थरोवाच-

त्वं मां पश्य महाराज पतितां धरणीतले॥७॥  
 शत्रुघ्नेन कुमारेण पृष्ठदेशे च ताडिताम्।  
 वज्ररूपपतञ्जेन सुमित्रातनयेन माम्॥८॥  
 नामा कुञ्जेति विख्याता मन्दिरे तव भूमिष।  
 स्तनभारेण नमाहं न तु कुञ्जं मयि स्थितम्॥९॥  
 इदानीं रूपतो जाता शत्रुघ्नेन च ताडिता।  
 कुञ्जां कृत्वा त्वया राजन् पुत्रद्वारेण भूभुज॥१०॥  
 पुनरुत्थाय सा चण्डी सुमित्रां वाक्यमब्रवीत्।  
 अहो देवि कुमारेण कन्दुकेन च ताडिता॥११॥

शत्रुघ्नेन महाभागे प्रेरितेन त्वया ह्यहम्।

श्रीसुमित्रोवाच-

न मया प्रेरितश्चण्डीश शत्रुहा करकन्दुकः॥१२॥

बालकानां स्वभावो हि रोदने ताडने श्रुत्वम्।

वर्तते मन्थरे मां किं सोपालम्भमिदं वचः॥१३॥

तावज्जगाद रामस्य धात्री परमसुन्दरी।

मुखं विलोक्य राज्ञस्तु सपलीनां तथैव च॥१४॥

धन्योवाच-

मन्थरे श्रृणु मद्वाक्यमर्भकस्य क्षमस्व तत्।

अपराधं महापापे बालानां क्रीडने सदा॥१५॥ १६॥

न वज्रपतनं जातं कूवरे तव पापिनि।

ताडने कन्दुकस्येव गदाभग्नेव रोदसि॥१६॥

सूत उवाच-

कुञ्जा निशम्य वाक्यं तु धन्याधात्र्यमुखेरितम्।

विचार्य हृदये चार्थं तस्य वाक्यस्य मन्थरा॥१७॥

ऊचे रामस्य धात्रीं च तत्तुभ्यं वण्यर्ते द्विज।

मन्थरोवाच-

प्रतिसम्बोधनं मां च पापे पापकुभाषिणि॥१८॥

त्वं वदसि महाधूर्ते कटाक्षे मोहिनी नृपम्।

शत्रुघ्नकरमुक्तोऽयं कन्दुको वज्रसन्निभः॥१९॥

तेन पृष्ठिश्च मे भग्ना तस्यां जातं च कुञ्जकम्।

त्वया धन्ये कृतं सर्वं राममानीय चात्र हि॥२०॥

न रामो ह्यत्र चायाति न चैताः पुत्रमातरः।

इत्येवं विललापाथ मन्थरा पापदर्शना॥२१॥

उवाच जनतां क्रूरं निघती आत्मनः शिरः।

येषां क्रूरस्वभावश्च क्रूरकर्मणि ते स्थिताः॥२२॥

हसन्ति किल नारीणां ताडने कन्दुकादिभिः।

राजा दशरथस्तां तु जगाद मन्थरां तदा॥२३॥

## श्रीराजा दशरथोवाच-

मा कुरु रोदनं भद्रे चिकित्सां कारयामि ते।  
हरिद्रां तव पृष्ठे च लेपयामि न संशयः॥२४॥

मन्थरोवाच-

मां किं वज्ज्ययसे राजनं ब्रणं कृत्वा च पृष्ठके।  
लेपनं चैव क्षारस्य हृग्निदधे वचो यथा॥२५॥

कदापि हृस्य वाक्यस्य फलं प्राप्यसि भूपते।  
इत्येवं वदतीं पापां मन्थरां पापदर्शनाम्॥२६॥

भृत्याभिर्भृत्यामास कैकेयी शत्रुघ्नप्रियकारिणी।  
अन्याभिर्भृत्यात् चण्डी विवेश गृहकोणकम्॥२७॥

लज्जिता तत्र सा कुञ्जा खिन्ना भूत्वावसच्चिररम्।  
कैकेय्याः भवनाद्राजा पत्नीभिः किल वीक्षितः॥२८॥

प्रहसन् प्रययौ गेहं राममातुः सुभास्वरम्।  
राजपत्न्यो ययुर्गेहं कैकेय्या चाभिनन्दिताः॥२९॥

शौनकोवाच-

श्री रामे चापि शत्रुघ्ने भरते लक्ष्मणे यथा।  
सर्वेषामधिका प्रीतिर्जनानां पुरवासिनाम्॥३०॥

येषां चेतो न वै रामे लग्नं ते पश्वः स्मृताः।  
ब्रह्माद्या सकलाः देवाः सनकाद्यास्तपोधनाः॥३१॥

शेषाद्याः पार्षदाः सर्वे कमलाद्याः विभूतयः।  
इन्द्राद्याः देवताः सर्वे मन्वाद्याः ज्ञानिनो नराः॥३२॥

सर्वे राममुपासन्ते योगिनो योगतत्पराः।  
पुसां मोहनरूपे च नारीणां मनोहारके॥३३॥

रामभद्रे कथं पापा दुष्टा द्रोहं चकार सा।  
अभिप्रायं तु कुञ्जायाः वद सूत महामते॥३४॥

कारणेन विना सा हि कथं राज्यविघातिनी।  
पूर्वजन्मनि केयं च नाम्ना चाभूत् मन्थरा।

इति सर्वं महाबुद्धे कथयस्व महामते॥३५॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे नवमोऽध्यायः।

□□

## दशमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

शृणुध्वमृषयः सर्वे कथां पौराणिकीं शुभाम्।  
रामराज्ये यथा विघ्नं चकार वत मन्थरा॥१॥  
अयोध्यावासिनः सर्वे विस्मयं लेभिरे तदा।  
तस्मिन् काले महातेजा लोमशो मुनिसत्तमः॥२॥  
आजगाम मुनिद्वारा वासुदे वपरायणः।  
तं प्रणम्य मुनिं सर्वे पप्रच्छुः पुरवासिनः॥३॥  
इदमेव महाभागा: श्रीमद्भिः पृच्छतेऽधुना।

लोमशोवाच-

कथयिष्यामि मो लोकाः मन्थराचरितं महत्॥४॥  
यच्छुत्वा भिद्यते ग्रन्थिरुत्पन्ना हृदयेषु वः।  
दैत्यानां प्रवरो राजा प्रह्लादस्य सुतो बली॥५॥  
नामा विरोचनो दैत्यो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्करः।  
तस्येयं मन्थरा कन्या पूर्वजन्मनि नागरा:॥६॥  
तत्रापि मन्थरा नाम दैत्यकन्या यदा ह्यभूत्।  
विरोचनस्तु धर्मात्मा ब्रह्मण्यो धर्मवत्सलः॥७॥  
राज्यं जहार देवानां तेन देवाः विलम्जिताः।  
हतश्रियो निरानन्दा आचार्यशरणं गताः॥८॥  
बृहस्पतिं सुरैः पूज्यमब्लुवनात्मनो हितम्।

देवा उवाच ( ऊचुः )-

वदोपाय महाबुद्धे येन लक्ष्यामहे दिवम्॥९॥  
विरोचनेन सर्वं नो राज्यं लब्धमकण्ठकम्।  
त्वया न ज्ञायते स्वामिन् अस्माकं कथनेन किम्॥१०॥

## सूत उवाच-

प्राहोपायं महाबुद्धिदेवान् प्रति बृहस्पतिः।  
 यूयं तु ब्राह्मणा भूत्वा प्रयान्तु दैत्यमन्दिरम्॥११॥  
 कुर्वन्तु याचनां देवाः सौम्यवाक्येन मोहयन्।  
 दैत्यं परमधर्मज्ञं तिष्ठन्तं सत्यधर्मयोः॥१२॥  
 यदि दाने प्रतिज्ञां च कुरुते दैत्यसत्तमः।  
 तस्माद्याचत चायुषि यूयं हि स्वार्थतत्पराः॥१३॥  
 प्रदास्यति महातेजाः ज्ञात्वा देहं च चञ्चलम्।  
 निर्दिष्टा गुरुणा देवा दैत्यराज्यं समाययुः॥१४॥  
 कृत्वा ब्राह्मणवेषांश्च तिलकादिभिरन्विताः।  
 विरोचनस्तु धर्मात्मा ज्ञात्वा देवान् समागतान्॥१५॥  
 ब्रह्मरूपधरान् शत्रून् पूजयामास धर्मवित्।  
 अद्य गृहं समायाता ब्राह्मणाः क्षितिदेवताः॥१६॥  
 वाञ्छितं ब्रूत धर्मज्ञ किमर्थं मे गृहागताः।

देवाः उवाच ( ऊचुः )-

परागाय यथा भृङ्गाः पुष्पाणां विद्रवन्ति चा॥१७॥  
 कलितं च यथा वृक्षं पथिकाश्च पतत्रिणः।  
 दानिनं ह्यर्थिनः सर्वे युवतीमिव कामुकाः॥१८॥  
 तथैव त्वां वयं सर्वे विद्धि याज्यार्थिनो नृप।

## विरोचनोवाच-

याचध्वममरा कामं किं ददाम्यहमात्मनः॥१९॥  
 भूतयः परकार्याय नृणां सन्ति युगे युगे।  
 द्रुमानां च फलानीव रत्नानीव महोदधे॥२०॥  
 जलानीव च मेघानां मलये चन्दनं यथा।  
 तथैव मम सर्वं च देहेन सह ब्राह्मणाः॥२१॥  
 कीर्तिस्तु पृथिव्यां मे श्रीमतां च प्रसादतः।

## लोमश उवाच-

वाक्यं निशम्य राज्ञस्तु ह्यमरा ब्रह्मरूपिणः॥२२॥

दैत्यं परमधर्मज्ञं कपटाच्च यथाचिरे ।

देवाः ऊचुः-

आयुर्देहि महाराज न्नायणेभ्यो हि याचितप् ॥२३॥

वचनं तु समाकर्ण्य देवानां कामस्त्रयिणाम् ।

जहासोच्चैर्महादैत्यः प्रहसन् वाक्यमन्नवीत् ॥२४॥

गृह्णतां काममेतेन आयुषा मे धनेन किम् ।

आश्रित्य मानुषं देहं नोपकाराय कल्पते ॥२५॥

न कृता विग्रसेवा च तेन किं नरजन्मना ।

देहं मुमोच धर्मात्मा सर्वेषां पश्यतां सुधीः ॥२६॥

बभूव परमं कष्टं दैत्यानां दुःखदं महत् ।

हाहाशब्दं च लोकेषु कर्म दैत्यस्य श्रृण्वताम् ॥२७॥

देहे दैत्यस्य वृष्टिश्च पुष्पाणां स्वर्गिभिः कृतः ।

इन्द्रादयो लोकपालाः विरञ्जिभवसंयुताः ॥२८॥

प्रशंसन्ति महत्कर्म दैत्येनाचरितं हि यत् ।

आदितेयाश्च ते सर्वे संक्रन्दनपुरःसराः ॥२९॥

त्रिदिवं भेजिरे सर्वे संपरेते विरोचने ।

परमानन्दमापन्नास्त्रिदिवेशाः महाबलाः ॥३०॥

दैत्यानां च महोशोको मृते राजन्यभूत् किल ।

समेताः संघशः प्रोचुः सभायामेकदा स्थिताः ॥३१॥

अहो देवा महाधूर्ता अस्माकं हनने रताः ।

छलेनास्माकं पालस्य हताः प्राणाः महीपतेः ॥३२॥

किं कुर्मो हि वयं कस्य शरणं वै व्रजामहे ।

लोमशोवाच-

एतस्मिन्नन्तरे लोकाः मन्थरा दैत्यरक्षका ॥३३॥

सुता विरोचनस्यासीत् पण्डितासुरकर्मसु ।

उवाच दैत्यान् सदसि प्रगल्भा दैत्यरक्षणे ॥३४॥

मन्थरोवाच-

अहं रक्षां करिष्यामि युष्माकं चात्मविद्यया ।

चरन्तु निर्भयाः लोके हननार्थं दिवौकसाम् ॥३४॥

प्रोक्तं मन्थरया वाक्यं निशम्य दनुजात्मजाः।  
 तुष्टवुर्मुदितास्तां तु वाक्यैः सन्दर्भशोभनैः॥३५॥  
 उद्यमं परमं चक्रुश्चोदिता दैत्यकन्यया।  
 मयांथ शम्बरो बाणो बलिः त्रिपुरवासिनः॥३६॥  
 पौलोमाः कालकेयाश्च प्रह्लादाद्याः महाबलाः।  
 वाहनानि प्रयुज्जतो दंशिता दुष्टचेतसः॥३७॥  
 गजानारुहुः सर्वे रथानन्ये च काशयपाः।  
 अश्वैः केचिच्च निर्याताः शूकरंगवर्यमृगैः॥३८॥  
 सिंहैरन्यैः खरैरन्येवस्तैः पक्षिभिर्निर्ययुः।  
 आनकान् वादयन्तश्च शंखानन्ये च शत्रवः॥३९॥  
 अग्रे गताः महावीर्याः सेनाया ध्वजधारिणः।  
 दैत्यानां च समुद्योगं वीक्ष्य शङ्खितमानसः॥४०॥  
 देवदूतो महाबुद्धिः नामा शौनकशचाशुगः।  
 कथयामास चेन्द्राय साहाय्यं मन्थराकृतम्॥४१॥  
 देवराजो महातेजा देवानाज्ञापयत् तदा।  
 वध्यतां दैत्यसङ्घानां बलं सर्वे हि देवताः॥४२॥  
 देवराजेन चाज्ञप्ता देवाः सर्वे च निर्गताः।  
 गन्धर्वा ये च गायत्रि देवानामग्रतो मुनेः॥४३॥  
 केतुभिः शोभमानाश्च कम्पमानैश्च वायुभिः।  
 गजराजं समारुह्य वज्रपाणिं सुरारिहा॥४४॥  
 उदन्वानिव देवानां दैत्यानां बलमाबभौ।  
 पृथिव्यां चाभवद् युद्धं जनानां भयकारकम्॥४५॥  
 द्वन्द्वयुद्धं महाभीमं देवदानवयोर्महत्।  
 देवैः पराजिताः दैत्याः स्मरन्तो मन्थरागिरम्॥४६॥  
 निर्ययुः शरणं तस्याशचात्मत्राणाय भीरवः।  
 मन्थरा च महापापा देवानां नाशहेतवः।  
 निर्जगाम गृहान्तूर्णमाकाशं चात्मविद्यया॥४७॥

श्रीलोमशोवाच-

तत्र स्थिता शुनासीरान् गणयामास तत्क्षणम्।  
 आदित्यांश्च महेन्द्रादीनश्चिवनौ मरुतस्तथा॥४८॥

विश्वेदेवावसूश्चैव रुद्रान् वीरान् विनायकान्।  
 संख्यां कृत्वा च सर्वेषां हस्ते पाशान् समादधे॥४९॥

पाशैर्बबन्ध देवानां विमानानि वाहनान्।  
 पातयामास स भूमौ च गजराजं महाबलम्॥५०॥

आखण्डलोपि वै शीघ्रं गजपीठाच्च वेपतः।  
 पलायतो गजं त्यक्त्वा देवान् सर्वाश्च गोव्रभित्॥५१॥

ग्राहं वै वरुणस्यैव वस्तं चाग्ने तथैव च।  
 वायो मृगं तथा शीघ्रं देव्याः सिंहं महाबलम्॥५२॥

आदित्यानां तथा चाश्वान् वायुवेगसमान् जवे।  
 मूषकं च गणेशस्य नीलकण्ठस्य नन्दिनम्॥५३॥

कुमारस्य मयूरं च तथा चान्यान् बबन्ध सा।  
 महिषं यमराजस्य शिविकां धनदस्य च॥५४॥

स्यन्दनं सोमराजस्य बबन्ध मन्थरा भृशम्।  
 वध्वा सर्वान् महाचण्डी पाशं जग्राह पाणिना॥५५॥

गृहीत्वा कर्षणं चक्रे देवानां सत्त्वशालिनाम्।  
 लञ्जिताश्चाभवन् देवा वीक्षतश्च परस्परम्॥५६॥

गन्धर्वाश्च तदा सर्वे जगदुनिञ्जरान्प्रति।

गन्धर्वा ऊचुः-

क्व गतो मघवा देवा हित्वा चेभवल्लभम्॥५७॥

अहल्यासङ्गकर्ता च देवराजो न दृश्यते।

क्व चास्ति गुरुपत्न्याश्च गामी चन्द्रो निशाकरः॥५८॥

क्व चास्ति रुद्रो जगतः प्रलये निरतः सदा।

स्त्रीस्वरूपस्य यो विष्णोरधावत् पृष्ठतः पुरा॥५९॥

क्व चास्ति धनदो राजा रणे काणो हि मन्दधीः।

पार्वत्या मुखपद्मेन पिङ्गत्वं प्राप चक्षुषिः॥६०॥

कुत्र चास्ति सुराचार्यो भ्रातुः पत्न्यांश्च भोगवान्।  
 भोग एव रता सर्वे न च संरक्षणे सुराः॥६१॥  
 अस्माकं पीड्यमानानां बले स्वत्प्रारणाजिरे।  
 विनिन्दतस्तदा देवान् गन्धर्वा रणपीडिताः॥६२॥  
 विश्वावसुस्तु गन्धर्वान् स्वान् गणान् अतर्जयत्।

विश्वावसुरुवाच-

कुणीतं नैव गायन्तु सदा देवैश्च पालिताः॥६३॥  
 गुणाः तेषां परित्यज्य यूयं वै ह्यगुणे रताः।  
 यथा काले वने भुक्तं त्यक्त्वा सर्वफलं विषम्॥६४॥  
 नारायणस्य चाङ्गानि देवाद्येते महाबलाः।  
 तान् निन्दन्ति महापापस्ते वै नरकगमिनः॥६५॥  
 निन्दन्ति देवान् खलु पापमूढाः।  
 साधूंश्च विप्रान् हरिवैष्णवांश्च।  
 तीर्थानि सिन्धुश्च व्रतान् ममांश्च

ते वै गमिष्यन्ति यमालयं वै॥६६॥

माननीयं वचो ह्येषां कर्म चैषां वक्चित् वक्चित्।  
 तस्माद्यशो हि गायन्तु सुराणां प्रधने बुधाः॥६७॥  
 एते क्षणाच्च जेष्यन्ति दैत्यान् विष्णोः विभूतयः।  
 सदा लाभो जयस्तेषां चैषां विष्णुः प्रसीदति॥६८॥  
 निर्भत्सिताश्च ये सर्वे गन्धर्वा स्वेन स्वामिना।  
 लम्जिताश्चाभवन सर्वे जगुर्देवान् महास्तवैः॥६९॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे मन्थरातारि  
 एकादशोऽध्यायः।

□ □

## द्वादशोऽध्यायः

लोमशोवाच-

तदा देवा महात्मानः स्वं स्वं गीतं निशम्य वै।  
मन्थराहनने यतं चक्रुस्ते रणमण्डले॥१॥

देवाः ऊचुः-

हे महेन्द्र महाबाहो मन्थराहनने यतः।  
अजातोकान्यथा भूमौ बध्वा कर्षति मानव॥२॥

तथास्माकमियं पापा कुरुते च रणाजिरे।  
एतां जहि महाधूर्ता तां वधे न हि दोषभाक्॥३॥

सूत उवाच-

देवैरुक्तः न मधवा वधे चास्याः मनोदधे।  
स्त्रियाश्च देवराजोहं कथं करोमि वै वधम्॥४॥

सागसासु च योषित्सु प्रहरन्ति न मानवाः।  
न पुनर्मद्विधाः पापं कुर्वते च हि ईदृशम्॥५॥

वाक्यं निशम्य ते देवाः बलारातेर्मुखोदशतम्।  
ऊचुः परस्परं लेखाः इन्द्रवाक्येन विस्मिताः॥६॥

इन्द्रेण कृतासन्धानाहं हन्मीति मन्थराम्।  
तस्माच्च मनसा विष्णोः शरणं वधसङ्कुटे॥७॥

यामो निश्चित्य चादित्याः पादपद्मं हरेहंदि।  
धारयामासुरव्यग्रा मन्थराहननोद्यता॥८॥

नारदोऽपि महायोगी वैकुण्ठे हरिमीश्वरम्।  
निवेदयति देवानां सङ्कटं मन्थराकृतम्॥९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् शीघ्रं बबन्धासि महाबलः।  
नन्दकं नाम चक्रं तु सुदर्शनमितीरितम्॥१०॥

पाञ्चजन्यं महाशङ्खं गदां कौमोदकीं तथा।  
 स्कन्धे दधार शार्ङ्गं च कठौ तूणीरं श्रियःपतिः॥११॥  
 नभोनिभं महाचर्म हस्तेनैकेन पङ्गजम्।  
 पीताम्बरं समावेश्य गरुडोपरि चारुहत्॥१२॥  
 जगाम पार्षदैः सार्द्धं समरे देवदैत्ययोः।  
 चामरैः वीञ्यमानश्च इवेतछत्रेण राजितः॥१३॥  
 पार्षदैः सेव्यमानश्च ताक्ष्येन स्तोत्रवाजिना।  
 नारायणो हि विश्वात्मा देवानां रक्षकः सदा॥१४॥  
 आजगाम महासंख्ये देवानां रक्षणाय च।  
 तमायान्तं समीक्ष्याशु सुराः परमहर्षिताः॥१५॥  
 उत्थिता समरे शीघ्रं प्राणं तन्वा इवागतम्।  
 पिदन्तः इव चक्षुभ्यां लिहन्त इव जिह्वया॥१६॥  
 जिघ्रन्त इव नासाभ्यां शिलष्टन्ति इव बाहुभिः।  
 प्रणेमुः सकलाः लेखाः शिरोभिश्चरणौ हरे॥१७॥  
 तुष्टुवु प्रणताः विष्णुं फुल्लपङ्गजलोचनम्।  
 कोटिविद्युनिभं वस्त्रं दधन्तं घनविग्रहम्॥१८॥  
 दधनं कौस्तुभं कण्ठे लक्ष्म्या बिभ्रमदर्पणम्।  
 वासुदेवं जगन्नाथं जगतां कारणं परम्॥१९॥  
 भुजैश्च विटपाकारैः सर्वाभरणभूषितैः।  
 तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या कल्पवृक्षमिवापरम्॥२०॥  
 देवारियुक्तीगण्डतिलकश्रीविलोपभिः ।  
 आयुधैः मूर्तिमदिभश्च कृजदिभश्च महास्वनम्॥२१॥  
 त्यक्त्वानन्तविरोधेन कतिष्ठेनारुणस्य च।  
 मुकुलीकृतहस्तेन विना तेन हृपस्थितम्॥२२॥  
 अनुग्रहं च कुर्वन्तं विशदैर्लोचनैः सरान्।  
 नमस्कृत्य महादेवमूर्चुर्देवाः सवासवाः॥२३॥  
 देवाः ऊचुः-  
 तुभ्यं नमो जगत् साक्षिन् नमो विश्वाग्रते विभो।  
 विश्वं बिभर्षि चित् शक्त्या कल्पान्ते विश्वहारिणो॥२४॥

उत्पत्तावजस्तोसि प्रलये शम्भुविग्रहः।  
 पालने त्वं महाविष्णुः सत्त्वाद्यैश्च त्रिधाकृतिः॥२५॥

तिलादीना च संयोगाद् विभाति स्फटिको यथा।  
 यथा ह्येकं जलं दिव्यं रसेषु बहुधेयते॥२६॥

तथैव त्वं महाबाहो जितो भक्तेश्च गीयते।  
 अव्यक्तं त्वां च वेदाश्च वदन्ति व्यक्तकारकम्॥२८॥

देहे स्थितं न जानन्ति ह्यकामं तृपकारिणम्।  
 दयालुं त्वां हि भो देव नाथं वेद विमूढधीः॥२९॥

पुराणं जरया मुक्तं सर्वज्ञं न विदुर्जनाः।  
 सर्वप्रभुरनीशस्त्वं सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः॥३०॥

त्वयेकः सर्वभूतानां शरीरे व्याप्य तिष्ठति।  
 चतुर्भुजाश्चतुर्वर्गचतुर्वेदाः चतुर्युगाः॥३१॥

चातुर्वर्णं च त्वत्तोभूत् तव नाभौ चतुर्मुखः।  
 सप्तैश्च सामैरुपर्णीयसे त्वं जलेषु सुप्तो खलु सप्तकेषु।  
 सप्तार्चिंतुंडो बत सप्तलौकैर्विराजमानो हृदि सप्तसप्तो॥३२॥

मनसा निगृहीतेन योगिनस्त्वामुपासते।  
 आगमैर्बहुधा मार्गाः कृता पुरुषसिद्धये॥३३॥

म्रोतांसीव च जाह्नव्याः सिंधौ तानि पतन्ति च।  
 त्वत् समर्पितविज्ञाश्च त्वद् भक्तास्त्वदुपासकाः॥३४॥

गतिस्तेषां महाबाहो भुक्तिमुक्तिप्रदा भवेत्।  
 यथा सर्वेषु भूतेषु ह्याकाशो व्याप्य तिष्ठति॥३५॥

तथा सर्वेषु भूतेषु भिन्नाभिन्नेन राजसे।  
 पुनासि किल नामा त्वं पापादपि यमात् प्रभो॥३६॥

किं पुनः स्मरणेनापि दर्शनस्पर्शवन्दनैः।  
 समुद्रादिव रत्नानि तेजांसीव विभावसोः॥३७॥

तथा त्वत्तो ह्यपराणि चरित्राणि लसन्ति च।  
 प्राप्तं ते चास्मि सर्वं च न चाप्राप्यं हि किञ्चन॥३८॥

अनुग्रहाय भक्तानां विभर्षि जन्मकर्मणी।  
 महिमस्तव चान्तं च श्रुतयो वै न लेभिरे॥३९॥

एवं प्रसादयामासु सुराः नारायणं हरिम्।  
 यथार्थकथनं तस्य न स्तुतिः परमात्मनः॥४०॥

तस्मै निवेदयन् वृत्तं हरये प्रभवे निजम्।  
 निरोधं देव अस्माकं सङ्गे मन्थरादधेः॥४१॥

अस्माकं तारणे शक्तो भगवान् वै रणसागरात्।  
 लोमशोवाच-

निशम्य बाक्यं देवानां भगवानम्बुजेक्षणः॥४२॥

उवाच तान्तान् देवान् मग्नान् व्यसनसागरे।  
 श्रीभगवान् उवाच-

दूरे गच्छतु भो कष्टं मयि तिष्ठति नायके॥४३॥

किं करिष्यति दैत्याश्च किं करिष्यति मन्थरा।  
 इदानीं विद्रविष्यन्ति मयि यत्ते कृते सतिः॥४४॥

युष्माभिश्च कृतस्तोत्रं ये पठिष्यन्ति मानवाः।  
 तेषां कामवरान् दास्ये नित्यदा चास्यपाठतः॥४५॥

सर्वतीर्थाविगाहस्य यत्कलं ज्ञायते क्षितौ।  
 तत्कलं जायते शीघ्रं स्तोत्रराजस्य पाठतः॥४६॥

किं बहूक्तेन भो देवाः सर्वपापक्षयं करम्।  
 स्तोत्रं हि देवदेवस्य शृण्वन् यान्ति परां गतिम्॥४७॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे  
 द्वादशोऽध्यायः।

## त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवान् उवाच-

यथोच्यते मया देवास्तथैव पाकशासनः।  
करोतु शीघ्रं सङ्ग्रामे मन्थरादेहनाशने॥१॥  
स्त्रियस्तु वा पुरुषो वापि षण्डो वापि नराधमः।  
न तेषां हनने पापं जायते नरेतरे॥२॥  
तस्मात् प्रयाहि भो वज्रिन् मन्थराहनने युधि।

लोमश उवाच-

आज्ञप्तो हरिणा चेन्द्रो ह्यागममन्थरां प्रति॥३॥  
दैत्यैः सह महादेव युयुधू रणमण्डले।  
तदा च मन्थरा पापा युद्धे दृष्ट्वा शचीपतिम्॥४॥  
चकार बहुधोपायं पुरन्दरनिवारणे।

इन्द्र उवाच-

कुत्र यस्यसि पापे त्वं वैरं कृत्वा महासह॥५॥  
सहस्रारेण वज्रेण तताडेन्द्रो हि मस्तके।  
मन्थरायाश्च क्रोधेन वशीभूतो हि वृत्रहा॥६॥  
वज्रपातेन तस्याश्च मस्तकं चूर्णितं बहू।  
पपात मूर्छिता भूमौ करं मूर्छिं च बिभ्रती॥७॥  
हाहेति रुदति वोच्चैः पुनर्हाहेति कुर्वति।  
ननाद सुमहानादं लुण्ठति धरणीतले॥८॥  
दिशश्च नादिताः सर्वाः पक्षिपश्चापतन्वहु।  
वृक्षाश्च कम्पिरे सर्वे जनास्त्रासमुपागमत्॥९॥  
दानवाश्चापि तां दृष्ट्वा पतितामिन्द्रताडिताम्।  
विद्रवन्ति रणं त्यक्त्वा सर्वे प्राणपरीप्सयाः॥१०॥

पतितान्पतमानांश्च पश्यन्ति समरकातराः।  
 पतितांश्च विलंघतः पश्यन्तो नहि पृष्ठतः॥११॥  
 पराजयो हि सञ्जातो दैत्यानां विष्णुसन्निधौ।  
 जयो बभूव देवानां समरे विष्णुसन्निधौ॥१२॥  
 सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः समो विष्णुश्च सर्वदा।  
 येषां तु यादृशी बुद्धिः फलदाता तथैव सः॥१३॥  
 दानवानां च शत्रुश्च शत्रुभावे कृते सति।  
 देवतानां तथा मित्रं मित्रभावे कृते सति॥१४॥  
 न वै विसमता तस्य कल्पवृक्षोपमो हरिः।  
 शुनासीरस्तदा देवो मूर्च्छयित्वा च मन्थरा॥१५॥  
 आजगाम हरेः पाश्वं देवराजः शचीपतिः।  
 जग्हे च हरेद्वन्द्वं पादपद्मं पुरन्दरः॥१६॥  
 तव प्रतापादेवेश पारं प्राप्तो रणोदधेः।  
 गच्छ देव निजं स्थानं मयाङ्गप्तो रणाजिरात्॥१७॥  
 एवं त्वया सदा कार्यं देवानां रणरक्षणे।

श्रीभगवानुवाच-

एवं भवतु भो देवा वचनं नानृतं क्वचित्॥१८॥  
 युष्माकं रक्षणं नित्यं करिष्येहं रणाजिरे।

लोमश उवाच-

आश्वास्य भगवान् विष्णुर्जगाम च निजालयम्॥१९॥  
 ययुर्देवा निजं स्थानं वादयन्तश्च दुन्दुभीन्।  
 मुदा परमया युक्ता बुभुजुः स्वर्गं सुखम्॥२०॥  
 अथ दैत्य समस्वस्था गतान् देवान् विलोक्य च।  
 आगता समरे शीघ्रं मन्थरां प्रविलोकितम्॥२०॥  
 दृष्टान् समागतान् दैत्यान् मन्थरा चाब्रवीदिदम्।

मन्थरोवाच-

पश्यन्तु दैत्यामूर्द्धानं पाकशासनताडितम्॥२१॥  
 स्त्रियं मातुं रणे हित्वा यूयं धूर्ताः पलायिताः।  
 गृहं नयत मां शीघ्रं दोलामारोप्य यत्तः॥२२॥

विदीर्णं मे शिरो नूनं ग्रीवा भग्ना विशेषतः।  
भग्ना कटिश्च मे वज्रात् पृष्ठे जातो हि कूबरः॥२३॥

लोमश उवाच-

बहुधा रुदती ह्येवं दैत्यानां शृण्वतां तदा।  
असुरास्तु भुजैस्तां च दोलामारोपयन् शनैः॥२४॥

वाहाश्च शिविकां चोहृगृहं प्रति रणाजिरात्।  
सा तु तैर्भयसंविग्नैर्वेशमध्येऽवतारिता॥२५॥

उच्चैः सा रुदे तीव्रं स्त्रिभिस्तु परिवारिताः॥२६॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशाँनकसंवादे  
त्रयोदशोऽध्यायः।

## चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीलोमश उवाच-

दैत्यपलिंश्च सा दृष्टा मन्थरा वाक्यमब्रवीत्।  
हस्ताभ्यां ताडती वक्षः क्रोशन्ती च सुरद्विषः॥१॥

मन्थरोवाच-

पश्यन्तु मे शरीरं हि बज्जघातेन भग्नितम्।  
युष्माकं स्वामिनामर्थे याताहं चेदृशी रणे॥२॥

स्त्रियः उवाच (ऊचुः)-

अत्यर्थं जल्पसे मन्दे अग्रेऽस्माकं न लज्जसे।  
अबला स्त्रियो हि नित्यं बलं तासां न कुत्रचित्॥३॥  
श्रुतं भोगविलासाश्च कामयुक्तनरेषु च।  
आत्मनः पौरुषं चण्डि प्रथितुं जगतीतले।  
गता त्वं रणमध्ये च देवदानवसङ्कुले॥४॥

अपरा ऊचुः-

आल्यः शृणुत अस्माकं वाक्यं चण्डयाश्च हृदगतम्।  
इयं याता हि समरे मुखं दर्शयितुं सुरान्।  
यथा गृहान्ति मां देवा मोहिता मम रूपतः॥५॥

अपरा ऊचुः-

स्तनौ दर्शयितुं याता देवेभ्यः रणमण्डले।  
गण्डशैलप्रतीकाशौ भुजवुत्थाय शीघ्रतः॥६॥

अपरा ऊचुः-

नूनं हि विस्मृतश्चेन्द्रः कर्णौ हास्याः न कृनितौ।  
नासिकायाः न छेदश्च कृतस्तेन महात्मना॥७॥

अपरा ऊचुः-

वक्षिदेव न कर्तव्यं योषिदिभः रणमण्डले।  
पराजये तु हास्यं स्याद् विजये न हि शोभते॥८॥

अपरा ऊचुः

पुनर्गच्छ पुनर्गच्छ देवानां विजयेच्छया।  
इदानीं गम्यतां मन्ते गत्वा जेष्यसि वै सुरान्॥१॥

लोमश उवाच-

इत्यैव जहसुस्तां च दैत्यपत्लीं गृहाङ्गणे।  
मन्थरा रुरुदे तीव्रं कराभ्यां निघन्तीं शिरः॥२०॥

प्राह वाक्यं महापापा भर्त्सयन्त्यसुरास्त्रियः।

मन्थरोवाच-

किं ब्रवीम्यात्मनः पापं यन्मया चरितं हि तत्॥२१॥

उपकारे हि जाताहं दुःखिता परिभृतिं ता।  
पुरुहूतोपि पापात्मा यः स्त्रियं निघवान् रणे॥२२॥

विडौजसो न दोषोस्ति दोषोऽयं चक्रपाणिनः।

जनार्दनोपदिष्टेन वज्रेणोन्द्रताडिता॥२३॥

कामाचारो हि विष्णुश्च धर्मवक्ता न धर्मभाक्।  
प्रहरन्ति न योषित्सु महात्मानो नरा क्वचित्॥२४॥

एवं वदन्ति पापात्मा भृगुपत्याश्च जिघिवान्।  
मया श्रुतं पुराणेषु ताडकां यमयातनाम्॥२५॥

पूतनां च दयासिन्धुः दाशरथिनन्दनन्दनम्।  
नयिष्यन्ति महाबाहुर्विष्णुर्मायाविनाम्बरः॥२६॥

परस्त्रीषु न गन्तव्यमिति वेदेषु चाब्रवीत्।  
स्वयं जातो हि वृन्दायाः पत्युस्तस्या वधाय च॥२७॥

दयां कुरुत भो लोकाश्चेतनाश्चेतनेषु च।  
प्रलयं कुरुते चास्य लोकस्याहि युगक्षये॥२८॥

कर्म यत् क्रियते तेन तन्निरर्थकमेव हि।  
जिह्वां वृषभपृष्ठेन ह्यजाकण्ठेस्तथास्तनौ॥२९॥

कूबरं चोष्टपृष्ठे च चकार नहि सार्थकम्।  
ईदृशां कर्ममेतस्य भक्तानामपि कथ्यते॥२०॥

प्रह्लादेन कृतं कर्म पुरा सत्ययुगेस्त्रियः।  
दैत्येन्द्रं च महाबाहुं नाम्ना हिरण्यकशिपुम् ॥२१॥

जघान सिंहरूपेण विष्णु प्रह्लादहेतुना।  
 ध्रुवस्य श्रूयतां कर्म संसारे ह्यतिदारुणे॥२२॥  
 तपसा च हरि तोष्य घातयामास भ्रातरम्।  
 किं बहुक्तेन भो लोका हताहं विष्णुना ध्रुवम्॥२३॥  
 यदि जीवामि देहेन ह्यनेन चातिदारुणाम्।  
 विष्णुं क्लिश्यामि भो दैत्याः पुनर्न कुरुते यथा॥२४॥  
 मृताहमन्यदेहेन क्लेशायिष्यामि वै हरिम्।  
 एवमेव करिष्यामि भग्नपिण्डेन किं मम।  
 कूबरं मम पृष्ठे च तेनाहं व्यथिता भृशम्॥२५॥  
 कूबरेण न शोभास्ति युवत्याः पुरुषस्य वा।

लोमश उवाच-

एवं चिन्तयती पापा कुञ्जे बुद्धिं निवेश्य सा॥२६॥  
 मृतोत्पन्ना च काश्मीरे कस्यचित् किञ्चिरिष्य वै।  
 कैकेय्या सह प्रीतिश्च दृढा याता तया सह॥२७॥  
 तया स्नेहं परिज्ञाय राजा दत्ता च भूभृते।  
 राजा दशरथेनापि गृहीता कैकयीप्रिया॥२८॥  
 बहुकाले गते लोकाः पूर्वं वैरं न विस्मृता।  
 विष्णं चकार रामस्य राज्ये च परमात्मनः॥२९॥  
 रामो नारायणः साक्षात् परमात्मा नराकृतिः।  
 भूभारहरणार्थाय सर्वदेवैश्च प्रार्थितः॥३०॥  
 रावणस्य वधार्थाय सीतया सह यात्यसौ।  
 वनानि दण्डकादीनि च्छत्रकूटादिपर्वतान्॥३१॥  
 एतेषां पावनार्थाया प्रयातो दक्षिणां दिशिम्।  
 शोकं कुरुत मा लोका रामसङ्कल्पमीदृशम्॥३२॥  
 श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः

□ □

## पञ्चदशोऽध्यायः

श्री अयोध्यावासिन ऊचुः-

मन्थरा चेदूशी पापा ह्योद्धां कथमाप सा।  
केन पुण्येन भो स्वामिन् संशयं नुद चोक्तिभिः॥१॥

श्रीलोमश उवाच-

हेतुर्मनो हि सर्वेषां नराणां मुक्तिबन्धने।  
पुरा मरणकाले च मन्थरा वज्रताडिता॥२॥

सम्मारं मनसा विष्णुं क्रोधात् परमसुन्दरम्।  
तेन पुण्यप्रभावेन लब्ध्वायोद्ध्या तया शुभा॥३॥

नरो हि मनसा यद्यत् ध्यायन् सन्त्यजते तनुम्।  
तत्तदाज्ञोति वै लोके मनसा ध्यातमेव च॥४॥

मन्थरया च श्रुतं वेदे साकेते विष्टरश्रवा।  
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं महाविष्णुर्निवत्स्यति॥५॥

नामरूपेण दिव्येन जनतामोहनेन च।  
तत्राहं च निवत्स्यामि विज्ञार्थं तस्य वै हरेः॥६॥

एवं चिन्तयती दुष्टा तत्याज स्वकलेवरम्।  
स्मरणस्य प्रभावेन प्राप्तायोद्ध्यां च मन्थरा॥७॥

अयोद्ध्या च महापुण्या विष्णोश्च नगरी शुभा।  
अत्र वासाद्धि सर्वेषां विष्णुलोको भवेत् नृणाम्॥८॥

मन्थरा तु हरेलोकं गमिष्यति न संशयः।  
यस्या मनो हि रामे च द्वेषाद्वसति सर्वदा॥९॥

तस्या मुक्तौ न सन्देहो या रामवदनाम्बुजम्।  
पिबती नेत्रपुटकैद्वेषादपि च मन्थरा॥१०॥

द्वेषात् कामात् भयाल्लोभाद्वामे चित्तं यथा वसेत्।  
तथैव करणीयं हि नराणां मुक्तिमिच्छताम्॥११॥

रामो चित्तं च येषां मुक्तिस्तेषां न संशयः।  
 व्रत दानतपोयज्जदीक्षासंस्कारसंयमाः॥१२॥  
 एतैर्न तुष्ट्यते रामो यथा भवत्या जनस्य च।  
 दानादिकं कृतं सर्वं रामे चित्तं न चास्थितम्॥१३॥  
 स्वर्गवासस्तु तैः पुण्यैः पुण्यान्ते च पतत्यधः।  
 यदि भाग्याद्धिः साधूनां सङ्गतिर्जायते क्षितौ॥१४॥  
 तदा रामस्य भवतौ च नराणां जायते मनः।  
 विना भवितं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते॥१५॥  
 यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे।  
 वैकुण्ठे भवतां वासः संशयो नात्र विद्यते॥१६॥  
 अयोध्यावासिनः सर्वे जगन्नाथस्य मूर्तयः।  
 ऋष्वकेन पुराप्युक्तं पार्वत्यैस्तत्वमेकदा॥१७॥  
 अयोध्यायाश्च माहात्म्यं च वक्तुं शक्तो न चाब्जजः।  
 इतरेषां च का शक्तिर्विश्वासाद्रहितात्मनाम्॥१८॥  
 यत्र नारायण साक्षाच्चतुद्धार्यस्य स्वां तनुम्।  
 सदैव रमते यत्र तस्याः किं वर्णयते गुणाः॥१९॥  
 इति संक्षेपतश्चोक्तं यद् वृत्तं मन्थराभवम्।  
 श्रीसूत उवाच-  
 एवमुक्ता यद्यौ विप्रो रामदर्शनलालसः॥२०॥  
 लोमशस्य च वाक्येन निःसन्देहास्तदाभवन्।  
 साकेतवासिनः सर्वे क्षितौ धन्याश्च शौनकाः॥२१॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः

□ □

- 
१. भाजाद्धि -क
  २. विना भवत्या न मुक्तिश्च नराणां मंडगोलके॥१५॥  
लोके भवतु द्याश्चर्यं जलाञ्जन्मधृतसय च।  
सिक्तायाश्च तैलं तु यत्ते यातु कथचन॥१६॥ -ग मातुकाया प्राप्यते।
  ३. पुराह्मजं - ग
  ४. पार्वत्यै पति नैकदा - ग
  ५. अयोध्याया - क
  ६. इहितात्मनाम् -

## षोडशोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच

श्रीपादपदं रघुनायकस्य फुलं नराणां हृदि भक्तिभाजाम्।  
तत्रापि चित्तं रमते तवैव भृङ्गो हि भूत्वा रसिकेन्द्र सूत॥१॥  
राजेन्द्रपुत्रस्य वदस्व लीलाम् संजीवनीं भक्तजनस्य<sup>३</sup> नूनम्।  
यस्याः<sup>३</sup> श्रुतौ सर्वमिदं हि याति<sup>३</sup> स्विष्टा<sup>४</sup> दिपूर्तस्य फलं हि लोके॥२॥

श्रीसूत उवाच

शृण्वन्तु रामस्य कथां च दिव्यां व्यासप्रसादात् कथयामि तुभ्यम्।  
व्यासेन प्राप्तां द्विजद्वापरादौ श्रीशक्तिपुत्रान् तृतये<sup>५</sup> युगे च॥३॥  
पराशरः शक्तिसुतो हि विप्र वाल्मीकितः पुण्यकथां पपाठ।  
तमवे तुभ्यं कथयामिवग्र<sup>६</sup> विमुक्तयेहं भवपाशबन्धात्॥४॥  
भूम्याः पतिः पङ्किरथो हुदारो रामस्य तातो भुवि धर्म गोप्ता।  
रामं समादाय स्वकीयक्रोडस्थितं सभायां निजमन्दिरस्य॥५॥  
तस्यां स्थिताः कुण्डलधारिणश्चकेयूरमुक्ता<sup>७</sup> भिरलङ्घकताश्च।  
उच्छीषयुक्तैर्मुकुटै सरलनकैः विभ्राजमाना सदसि प्रथौजसः<sup>९</sup>॥६॥

१. संजीवनीभक्तिं नरस्य - क
२. यस्य - क
३. जातम् - ग
४. मिष्टा - ग
५. तृतीये - ग
६. वर्य - ग
७. क्रोडे - ग
८. केयूरमुद्रा - ग
९. प्रथौजसः - क

प्राच्या उदीच्या द्विजदाक्षिणात्याः सर्वे स्थिताः भूपतिसन्निधौ च।  
 सर्वाः प्रजाः सर्वरतं च भूपं रामस्य तातं नयनैर्पुश्च॥७॥  
 स्वर्णस्य दण्डानिः करेषु येषां विचित्रत्वैर्दृढनिर्मितानि।  
 ते वै स्थिता द्वारि महाविभूतेः राजो हि वाक्ये निरता सदा वै॥८॥  
 गृहीच्च भो नाथ महेन्द्रतुल्य नतिं नराणां प्रणतामभीक्षणम्।  
 वदन्ति चैव द्विजद्वारकाश्च स्वयं विनीताः<sup>३</sup> वरकुण्डलैश्च॥९॥  
 छत्रेण राजा परिराज्यमानस्तुल्येन चन्द्रस्य हि मण्डलेन।  
 मुक्तामणिनाः<sup>४</sup> ग्रथितेन दाम्ना चक्षुषिं विप्रा हरता जनानाम्॥१०॥  
 प्रकीर्णकाभ्यां च विराजमानो हंसश्रियाभ्यां शिरसि शिवाभ्याम्।  
 ब्रह्मस्यमानं शिरस्तयोश्च<sup>५</sup> राजो हि छत्रं शुभवायुना वै॥११॥  
 गन्धर्वमुख्याः प्रजगुस्तदानीं नट्यस्तदग्रे<sup>६</sup> ननृतुर्महीपतेः।  
 श्रीरामचन्द्रं द्विजबालस्त्रपं वाक्यैः प्रियैल्लायतः<sup>७</sup> स्वपुत्रम्॥१२॥  
 श्यामं शुचौ पेघनिभं क्षमाभं दूर्वाप्रिभं नीलमणिं च रामम्।  
 सुवर्णसूत्रै रचितां च पट्टिकां मूर्ध्यां<sup>८</sup> दधानं मणिचित्रिताम्॥१३॥  
 चन्द्रो यथा राजति चाष्टमीषु तथा हि रामस्य ललाटफलकम्॥१४॥  
 तस्मिन् दधानं शरभोद्भवस्य विशेषकं साधुजनस्य मोहनम्॥१४॥  
 श्रुतौ च श्यामौ धनुषाकृती च संसूचितभूर्यनुग्रहं वै। भवतेषु।  
 तत्रैव च कालवासस्तेनैव लोकः प्रलयं समेति॥१५॥

- 
१. स्वर्णदण्डानि - क
  २. दृढनिर्मिता च - क
  ३. विनीतां - ग
  ४. मुक्तामणीनां - ग
  ५. श्रीयाभ्यां - क
  ६. परितस्तयोश्च - ग
  ७. च - ग
  ८. नट्यस्तदाने - क
  ९. प्रियैल्लायतः - क
  १०. मूर्धा - ग
  ११. मणिचित्रितं - ग
  १२. ललाटकूलकं - क

नेत्रद्वयं हृंजनरंजितं च विलोकयन्तं पितरं च तेन।  
 चापल्ययुक्तेन मनोहरेण खञ्जनस्य मीनस्य च चञ्चलस्य॥१६॥  
 नासां शुकस्येव समुन्नतां च तथैव रम्ये पितुरङ्गदेशे।  
 गण्डौ च रम्यौ शुभकुण्डलाभ्यां परिवृताभ्यामलकैः सुनीलैः॥१७॥  
 नीडो हि वेदस्यै सुपर्णमूर्तेस्तत्रैव लीनस्यै तमेव वक्ति।  
 कर्णां च दिव्यौ रघुनन्दनस्य दन्तास्यबीजानि तु दाढिमस्य॥१८॥  
 ओष्ठद्वयं दाढिमपुष्पभासं हास्यं नरोन्मादकरं दधानम्।  
 ओष्ठादधस्ताच्चिवबुकं च सुन्दरं तस्यैव गर्ते नृपदृष्टिः मग्ना॥१९॥  
 ततो हृष्टस्ताद् रघुनायकस्य कण्ठं त्रिरेखं जलजस्य नाम्ना।  
 स्तनद्वयं नीलमणेश्चभित्तं तथैव रामस्य निबोध वक्षः॥२०॥  
 विशोभमानं नखरैर्हरेश्च जाम्बूनदस्वर्णपरिष्कृतैश्च।  
 इलेन्द्रपत्रस्य च नाभिकुण्डं तथैव जातं विधिलोकपदम्॥२१॥  
 नितम्बविम्बं रघुनायकस्य सूत्रेण बद्धं मणिचित्रितेन।  
 उरुं च श्यामौ पृथुलौ च पीनौ विभ्रन्तमेव शिशुरूपरामम्॥२२॥  
 जानूं च जड्हे प्रपदे च दिव्ये पादाङ्गलीभिर्नखचन्द्रिकाश्च।  
 चिह्नानि सर्वाणि पदारविन्दे प्रदर्शयन्तं निजसेवकेभ्यः॥२३॥  
 पदं च धेन्वाः कुलिशं च विन्दुं तथा ध्वजं ह्यमृतकुण्डकं च।  
 वस्त्राङ्गुशं जम्बुफलं च मत्स्यं धनुर्महेन्द्रस्य तथा त्रिकोणं॥२४॥  
 वज्रं च पदं च तथा यवं च षट्कोणकं चाप मनुष्यमेकोः  
 शङ्खं च चक्रं च तथाष्टकोणां मूर्द्धेऽच रेखां षट्स्वस्तिकं च॥२५॥  
 हिमांशुमूर्तेश्च तथैव चार्द्धमेतानि चिह्नानि पदे दधन्तम्।  
 इत्थं नरेशः शिशुरूपरामं पीतेन गुप्तं शुभकञ्चुकेन॥२६॥  
 संलालयानो युवतीभिरिष्टस्तथा नरैः साध्विति वाच्यमानः।  
 व्रतेषु श्रेष्ठा किल वा तिथीनां स्त्रेण व्याप्तिर्भुवनेषु तस्याः॥२७॥

१. देवस्य - ग
३. मेकं - ग
५. साध्विति - क
७. या - ग

२. लीलस्य - ग
४. मूर्द्धा - ग
६. वाच्यमाने - ग
८. व्यक्ति - क

तस्यां तिथौ कल्पमहीरुहस्य छायां निविष्टो लालयन् स्वपुत्रम्।  
 देवा महेन्द्रप्रमुखाश्च सर्वे स्वर्गस्य द्वारे बत मञ्जनाय॥२८॥  
 चतुर्युगेषु हरिवासरेषु स्नानं हि पुण्यं द्विज वै सरव्याः॑॥२९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे षोडशोऽध्यायः।

□ □

## सप्तदशोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

इन्द्रादयो लोकपाला ऋषयः पितरस्तथा।  
समाजगमु अयोध्यायां मञ्जनाय महामुने॥१॥

इन्द्रो रथं समारुह्य सहस्राश्वं पताकिनम्।  
नानावस्तूसमाकीर्ण नानाचित्रोपशोभितम्॥२॥

कृत्रिमैः पक्षिवृन्दैश्च नानामृगसमन्वितम्॥३॥

रचितं विविधोपायैः स्वर्णकीलदृढीकृतम्।  
ईदृशं रथमास्थाय जगाम मघवा प्रभुः॥४॥

शिवोपि स्वगणैः सार्द्धमारुह्य नन्दिनं वृषम्।  
पार्वत्या सह चासीनः कपर्दी सर्पभूषणः॥५॥

जटायां स्वर्णवर्णायां दधानो हरिपादजाम्।  
गणैश्च विविधाकरैर्विकटैर्भैररवैः वृतः॥६॥

वामनैः पिङ्गलैः श्वेतैः विविधैश्च गणैर्वृतः।  
ललाटे चार्द्धचन्द्रेण शोभमानो हि भस्मनां॥७॥

गजचर्मपरीधानः शूलहस्तो दिगम्बरः।  
चचाल सोपि निर्नेक्तुं सरव्यां हरिवासरे॥८॥

ब्रह्मा हंससमारुह्य वेदवक्ता चतुर्मुखः।  
पादैः रक्तं मुखे रक्तं कैलासमिवरतकैः॥९॥

१. सद्टायां - ग
२. भस्मनः - क
३. निर्भक्तु - ग
४. सरध्वां - ग
५. पादै - ग
६. रक्तकैः - ग

शुक्लं शुक्लघटाकारं राजहंसं महाप्रभम्।  
 तमास्थाय महादेवः परमेष्ठी कमलासनः॥१०॥

गणेशः पर्वताकारोऽ मूषकं गजसन्निभम्।  
 समास्थाय जगामाथ सरव्यां हरिवासरे॥११॥

तुन्दिलश्चैकदन्तश्च दीर्घकर्णो गजाननः।  
 विष्णुप्रियोऽ गणाधीशो हस्ते परशुधारकः॥१२॥

आखुपृष्ठे समासीनो गजपृष्ठे यथा हरिः।  
 गन्धवर्शचतदा सर्वे अप्सरोभिश्च शोभिताः॥१३॥

विमाने चास्थिताः सर्वे किंकिणी जालमालिनी।  
 पताकिनी महादिव्ये सर्वाश्चर्यसमन्विते॥१४॥

सहस्राणं शतं विप्र विमानानि प्रतस्थिरे।  
 देवानां ध्वजनीचाथ प्रयाता नगरं प्रतिः॥१५॥

साकेताख्यं महादिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।  
 ऐरावतोऽ बभूवाग्रे ध्वजिन्योऽ नमुचिद्विषः॥१६॥

केतनानि सुरक्तानि दीर्घदण्डानि चाग्रतः।  
 प्रयातानि ह्योध्यायाः मार्गमुहिष्य वेगतः॥१७॥

गायतां वाद्यतां चापि गन्धवर्णानां प्रहर्षतः।  
 मृदङ्गानां प्रणादेन तथा गीतेन चाम्बरे॥१८॥

श्रुतं दशगुणं पूर्वं तथा ज्ञातं नरैर्नभः।  
 वायुमार्गेण ते सर्वे प्रस्थिताश्च सहस्रशः॥१९॥

स्वनवन्ति विमानानि किञ्छिणीभिश्च नाकिनाम्।  
 अभिलाषेन देवानां विमानानि प्रयान्ति वै॥२०॥

वायुना ग्रियमाणानि तपःसत्यनिवासिनाम्।  
 जनलोकान् महलोकैऽ ध्रुवलोकं समागमन्॥२१॥

- 
- |    |                 |                    |
|----|-----------------|--------------------|
| १. | पर्वताकारं - क  |                    |
| २. | विष्णुभक्तो - ग |                    |
| ३. | ऐरापति - ग      |                    |
| ४. | ध्वजिन्याः - ग  | ५. समुचिद्विषः - ग |
| ६. | चाम्बर - ग      | ७. महलोकं - ग      |

धुवलोकान् महर्षीणां सप्तानां पुनरापतन्।  
 स्वर्गलोकं तथा पश्यन् भुवल्लोकं तथापतन्॥२२॥  
 चन्द्रमण्डलभावार्थं सूर्यलोकं तथागमन्।  
 आकाशगङ्गासम्पर्कादामोदैः कल्पशाखिनाम्॥२३॥  
 युक्तेन वायुना सर्वे सूर्यतापं न ते विदुः।  
 क्वचिद् गच्छन्ति वेगेन केतनैर्वायुनेरितैः॥२४॥  
 क्वचिद् गच्छन्ति मेघेषु विमानानि च मन्दतः।  
 अश्वा गजा रथा सर्वे मेघेषु चकाशिरे॥२५॥  
 वासवस्य मतङ्गस्तु समूहेषु पयोमुचाम्।  
 राज गगने पूर्णः शरदीवं निशाकरः॥२६॥  
 वेगाच्च वाहनानां च मेघा अपि ह्यधोभवन्।  
 स्यन्दनानां च चक्रेषु गजदन्तेषु तेऽभ्रमन्॥२७॥  
 पर्वता इव दृश्यन्ते गगने पक्षकैः सह॥।  
 पुनरुत्पत्यते सर्वे ददृशु मेंदिनीतनम्॥२८॥  
 द्वीपांश्च सागरांश्चैव पर्वतांश्च वनानि च।  
 सप्तभिः सागरैश्चैव शोभितं धरणीतलम्॥२९॥  
 भूदेव्याः सर्वगात्राणि वृत्तानि वलयैरिवः।  
 मध्ये पृथिव्या मेरुं च कनकं कुसुमं यथा॥३०॥

१. भुवल्लोकं -क
२. चन्द्रमण्डलभावार्थ - ग
३. च ते गामन् - ग
४. प्रकाशिरे - ग
५. पयोमुचान् - ग
६. सरदिनीव -ग
७. वेगं च - क
८. स्वकैः - ग
९. पुनरुत्पत्यते - ग
१०. ददृशु - क
११. धारणीतले - क
१२. कनकस्य - ग

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्चकैः ।  
 जम्बूद्वीपस्य खण्डानि तेऽपश्यनवसंख्यया ॥३१॥  
 तत्रापि च जनान् भद्रान् प्रणेमुः करकुड्मलैः ।  
 श्रीसूत उवाच-  
 तेषां प्रणमितं दृष्ट्वा॑ पौलोमी प्रतिमब्रवीत् ॥३२॥  
 हास्यं प्रकृत्वं पदम् नर्तयन्ती करेण सा।  
 सा प्रोवाच॒  
 ब्रूहि मह्यं त्रिलोकेश प्रणमन्ति दिवौकसः ॥३३॥  
 कस्मै देवाय तीर्थाय देशाय वा॑ सुरेश्वर।  
 इन्द्रोवाच  
 शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कारणं नमनस्य च ॥३४॥  
 इदं भरतखण्डं च कर्मभूमिरियं शुभा।  
 अत्र देवान् समाराध्य प्रयान्ति त्रिदशालयम् ॥३५॥  
 क्रतूनां च शतं कृत्वा प्राप्तोहं देवराजताम्।  
 पुण्यानि बहुशः कृत्वा त्वमप्यत्रैव मानदे ॥३६॥  
 प्रयाता देवराजानं पत्नीत्वं च मनोरमे।  
 धन्या अत्र जनाः सर्वे हिमवद्विंध्यमध्यगाः ॥३७॥  
 शुभकर्मकराश्चात्र धरण्याज्ञवः वरानने।  
 सम्प्रयान्ति॑० परं स्थानं दिव्यं सुकृतिनां पदम् ॥३८॥

१. मुच्चकैः - ग
२. चाज्जनाभं च - ग
३. प्रणाम- ग
४. तदृष्ट्वा - ग
५. पौलोमी प्रतिमब्रवीत् - ग
६. सच्चुवाच - ग
७. दिवौकसाः - ग
८. च - क
९. धरण्याश्च - ग
१०. प्रयान्ति ते - ग

इदं पश्य प्रिये स्थानं जगन्नाथस्य सागरे।  
 मुक्तये किल विश्वस्य ब्रह्मणा स्थापितं पुरा॥३९॥

इदं क्षेत्रं महापुण्यं खण्डे भरतसंज्ञके<sup>१</sup>।  
 इयं काशी महापुण्या विश्वनाथकृतालया॥४०॥

यत्र गङ्गा महापुण्या हरिपादसमुद्भवा।  
 गयाक्षेत्रं महापुण्यं पितृणां तर्पणं यतः॥४१॥

तत्त्वं पश्य महाभागे तीर्थराजं पुनः शुभम्।  
 यत्र गङ्गा च कालिन्द्या सरस्वत्या च सङ्घता॥४२॥

पश्य त्वं चित्रकूटं च शृङ्गरूल्लिखतीव खम्।  
 महेन्द्रं दर्दुरं चास्या: नितम्बाविव तौरक्षितेः॥४३॥

ऋक्षवन्तं च सहं च भूदेव्याश्च कुचाविव।  
 तं विलोकय भो भद्रे व्यङ्गटेशं नमस्कुरु॥४४॥

रामेश्वरं सेतुबन्धं तीर्थान्यन्यानि यानि च।  
 द्वारकां स्वर्गस्त्वां च श्रीकृष्णो यत्र तिष्ठति॥४५॥

मायापुरीं च मथुरां वनं वृन्दावनं शुभम्।  
 यमुनापुलिनं भद्रे यत्र कृष्णो हि वत्स्यति॥४६॥

पश्यायोध्यां पुनः कान्ते प्रणामं कुरु मूर्द्धना।  
 यस्यां जातो हरिः साक्षात् परमात्मा नराकृतिः॥४७॥

सूत उवाच

पौलोमी च हरेवार्क्यं हृदि कृत्वा ननाम ताम्॥४८॥

पौलोम्या नमनं दृष्ट्वा गन्धव्योम्परसस्तथा।  
 प्रणेमुः प्राञ्जलिं कृत्वायोध्यायै च पुनः पुनः॥४९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे सप्तदशोऽध्यायः।

१. पितृणां तर्पणं यतः - ग
२. वाक्यमिदं ग -हस्तलेखे नास्ति
३. तलौ - ग
४. स्वर्णरूपं च -ग

## अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

शर्चीं प्रणमतीं दृष्ट्वा सावित्री पतिमल्लवीत्।  
पत्युः करं करेणैव पीडयन्ती पतिप्रिया॥१॥

सावित्री उवाच-

कस्मै नमन्ति भो स्वामिन् ऋभुक्षाप्रमुखाः स्त्रियः।  
कस्मिंदेशे वयं प्राप्ता प्रभावं वद चास्य भो॥२॥

सूत उवाच-

तस्याः वाक्यं निशम्याथ प्रत्युवाच प्रजापतिः।  
प्रत्युत्थाय प्रणाम्यादौ दण्डवन्नगरं प्रति॥३॥

ब्रह्म उवाच-

अयोध्येयं महापुण्यां विष्णोराद्या पुरी शुभा।  
अस्यां जातो हरि साक्षात् परमात्मा नराकृतिः॥४॥  
धन्यो दशरथो राजा यस्य पुत्रः स्वयं हरिः।  
योऽस्याः पुर्यस्तु भूपाल इक्ष्वाकूनां प्रवरः सुधी॥५॥  
यत्र यामोऽ वयं सर्वे वस्तुसुकृतं कोटिभिः।  
यत्रेयं सरयू दिव्या नदीनामुत्तमा नदी॥६॥  
यस्याः दर्शनमात्रेण पापराशिर्विनश्यति।  
ब्रह्मद्रवमिदं भद्रे नास्त्यस्या उपमा क्वचिद्॥७॥  
यस्य पादतलाञ्जाता गङ्गा भागीरथी क्षितौ।  
स्नानार्थाय यस्याश्च गच्छतो वै जनस्य च॥८॥

१. यस्याः - क

२. इक्ष्वाकुः - क

३. यत्रासामो - ग

४. अस्नानार्थ - ग

५. वस्तुषु कृत - क

६. गतो वर्शच - क

पदे पदेऽश्वमेधस्य न फलं दुर्लभं भवेत्।  
 महिम्नः क्वापि गङ्गायाः पारः शास्त्रेण दृश्यते॥१॥

सरव्याः महिमानं को वेत्ति लोकेः च पण्डितः।  
 यत्र नारायणो नामा रामस्मास्यति सर्वदा॥२०॥

ब्रह्मद्रवेः पुनश्चात्र रामः क्रीडां करिष्यति।  
 कैरस्याः लभ्यते पारो शास्त्रैस्थूलदृष्टिभिः॥२१॥

यमुनायाः सरव्याश्च प्रभावो नहि वर्णितः।  
 ऋषिभिस्तु पुराणेषु बहुधा न हि दर्शितः॥२२॥

यत्र रामश्च कृष्णश्च क्रीडां दिव्यां करिष्यतः।  
 भागीरथ्याः महिमस्तु यदि पारो न लभ्यते॥२३॥

तर्हि गन्तुमहिम्नोन्तकः समर्थोः नरस्तयोः।  
 हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये भूवैकुण्ठोऽपि दृश्यते॥२४॥

नाम्नायोध्येति विख्याता हृजेया सकलैरपि।  
 पश्य पश्य महाभागे पुरीं शृङ्गरिवाम्बरम्॥२५॥

आश्लिषन्तीं विमानानि भुजैः स्वर्गंगतोच्छ्रुतेः।  
 प्रासादस्थाः नरानायोऽचाधोभागेषु वार्षिकान्॥२६॥

मेघान् पश्यन्ति वर्षायां कौतुकेन स्पृशन्ति च।  
 स्वर्णवस्त्रैदीर्घदण्डैः केतनैर्वायुलोलितैः॥२७॥

नरैर्न ज्ञायते सूर्यादातपश्च गृहे गृहे।  
 अस्याः शृङ्गेषु मेघाश्च स्थित्वा स्थित्वा प्रयान्ति वै॥२८॥

महता जलभारेण सेचनाथ जलागमे।  
 प्रासादस्था युवत्यो वै वदनैश्चन्द्रसन्निभैः॥२९॥

१. ले - ग
२. तं नमस्यति - ग
३. ब्रह्मद्रवं - ग
४. कृष्णश्च रामश्च - ग
५. समर्थ - ग
६. रिवाम्बरे - ग
७. वरानार्यश्चा - ग
८. स्थित्वा - ग
९. युवत्यश्च - ग

रात्रौ दिवा च<sup>१</sup> लक्ष्यन्ते चन्द्रा इव सहस्रशः।  
 शिखाभिरिक्व दीपानां धूमितं पश्य चाम्बरम्॥२०॥  
 शातकुम्भस्य रेणुवै प्रपदा ताडितोषि सन्।  
 मूर्छेसु<sup>२</sup> न पतत्येव नराणां मार्गगामिनाम्॥२१॥  
 पथि बाला क्रीडयन्ति<sup>३</sup> स्वर्णधूल्या सहस्रशः।  
 अश्वदारैर्गजारोहै रक्षिता स्वन्दनैस्तथा॥२२॥  
 गजाश्चात्र सरच्चां वै चानीता यन्त्रभिर्बहुः।  
 कुशेश्चैश्च क्रीडन्ती गजीभिः कलभैः सह॥२३॥  
 अपः पिबन्ति वासित्या<sup>४</sup> वितृषेषि पुनः पुनः।  
 पुरस्त्रीजनविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जराः<sup>५</sup> ॥२४॥  
 स्वर्णशालापुरी चेयं सरच्चां छायया निशम्।  
 वसतीव<sup>६</sup> विमानाग्रैः पिण्डिंगी कुर्वती दिशः॥२५॥  
 वसन्ति चात्र<sup>७</sup> राजानो रघूणामाज्जया सदा।  
 सदाभ्यासेन रचिता शिल्पिनां प्रवरेण च॥२६॥  
 दृश्यते नरलोकेषु स्वर्गमूर्तिरिवापरा।  
 अयोध्यायाः सरच्चाश्च मध्ये सोपानजा द्युतिः॥२७॥  
 यथा कण्ठे युवत्यश्च मालास्वर्णस्य भासुरा।<sup>८</sup>  
 क्षितीशानां सहस्रैश्च पूजितेयं वरानने॥२८॥  
 विदधेया विमानेन शिल्पिना प्रवरेण च।  
 प्रेष्णोव सरयू यत्र मुक्तादामभुजोर्मिभिः॥२९॥

१. दिव्याश्च - क
२. धूलितं - ग
३. मूर्छेसु - क
४. प्रक्रीडन्ति - ग
५. शिष्यादि - ग
६. पुरस्त्रीस्तनविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जराः - ग
७. वसती च -ग
८. चा -क
९. भास्वरा -ग?

बध्नाति सर्वतः पुर्याः पद्मिन्याः कुसुमैः सह।

पश्येमां सरयूं दिव्यां विरजां विरजोद्भवाम्॥३०॥

इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां धात्रीं परममङ्गलाम्॥३१॥

शैवालकेशां सरसीरुहाक्षीं पद्माननां पद्मपलाशावस्त्राम्।

दीघोर्मिहस्तां कुमुदद्विजां च हंसस्तनीं विद्धि च केन्द्रहासाम्॥३२॥

पुलिनाङ्के पयोदुर्धैर्योर्पयन्ती नरान् सदा।

एवं जानीह भो कान्ते धात्रीं श्रीसरवृन्दीम्॥३३॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे अष्टादशोऽध्यायः।

□□

## एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीब्रह्मोवाच-

अनानां निचयान्<sup>१</sup> पश्यन् नद्यास्तीरे सहस्रशः।  
 क्रियन्ने पर्वताकाराः क्रयविक्रयकारिभिः॥१॥  
 तान्यात्रिकाश्च<sup>२</sup> बहवो नानादेशनिवासिनः।  
 क्रयं कृत्वा<sup>३</sup> च वस्तूनां पोतेषु स्थापयन्ति च॥२॥  
 विक्रीय निजवस्तूनां द्विगुणेन महामनाः।  
 पणवीथ्यां मणीनां च पूर्णं पश्य सहस्रशः॥३॥  
 गारुत्मतस्य<sup>४</sup> शतशस्तथा द्वात<sup>५</sup> सहस्रशः।  
 मुक्तानां गजमुक्तानां मणीनां चन्द्रसूर्ययोः॥४॥  
 भूतयः सन्ति या ह्यत्र दिग्भुजां न गृहेषु ता।  
 अत्र दुन्दुभिनादाश्च भेरीनादा अहर्निशम्॥५॥  
 सुस्वरा अपि श्रूयन्ते जनैश्च निजभाग्यतः।  
 राज्ञो दशारथस्यापि जयशब्दप्रकुर्वती॥६॥  
 सरयूजल<sup>६</sup>कल्लोलैर्लक्षणेति कृता मया।  
 मेघाः वर्षन्ति वर्षायां मंदिरे नगरे तथा॥७॥  
 उच्चाटालं हिं<sup>७</sup> रोहन्ति नरा नार्योऽर्भकैः सह।  
 तस्मिन्नदेशेषि वृष्टिश्च पुनरन्यं प्रयान्ति वै॥८॥  
 तत्रस्थाः वर्जीमूतान् सदा पश्यन्ति कौतुकान्।

- १. निचयं -ग
- २. सांयात्रिकाश्च - ग
- ३. क्रियं कृत्वा -क
- ४. गरुत्मतस्य - ग
- ५. राज्ञो -ग
- ६. सरयूनिज -ग
- ७. वर्ष - ग

५. बाल - ग

७. प्र - ग

श्रीसूत उवाच-

एतस्मिन्नन्तरे सर्वा: पूर्वचितिमुखाः स्त्रियः॥१॥

तिलोत्तमा मंजुघोषा रम्भाद्या उर्वर्शीमुखाः।

गन्धर्वाप्सरशो यक्षाः विद्याधराः रतिमन्मथाः॥२॥

विवर्णवदनाः भूत्वा धातारं च विजिज्ञयुः।

सर्वा: कञ्चुः -

देव देव महादेव परमात्मान्मोस्तु ते॥३॥

अयोध्यां पश्य भो देव चात्रस्था युवतीः शुभाः।

सुकेशी श्यामेनेत्राश्च श्यामाः श्यामेन वर्जिताः॥४॥

नागवल्लीदलैः पूर्ण शोभितं मुखपङ्कजम्।

नासायां मौकितकं वासः<sup>३</sup> स्वर्णसूत्रेण राजते॥५॥

कञ्चुक्या च कुचौ पीनौ छादितौ बहुरलया।

तथा निर्गत्य किञ्चिच्च राजतौ वर्तुलौ पुनः॥६॥

राजन्ति ललनाः सर्वा: अट्टेऽट्टे विद्युतोपमाः।

युवकाश्चात्र कामाभाः मणिकुण्डलधारिणः<sup>३</sup>॥७॥

निष्कग्रीवावलयिनो हारिणोङ्गदिनो<sup>४</sup> नराः।

किं बहूक्तेन भो देव मदना इव भूरिशः॥८॥

नैतादृश्यै युवत्यैश्च<sup>५</sup> स्वर्गलोके कथंचन।

यादृशो युवतीयूथाः दृश्यन्ते यत्र भूरिशः॥९॥

स्वर्गलोके च<sup>६</sup> भूलोकाद् विशेषो नहि विद्यते।<sup>७</sup>

भौमाय ते तु सर्वेषां स्वर्गो भूमौ प्रदृश्यते॥१८॥<sup>८</sup>

१. सूत उवाच - क
२. चासां - ग
३. श्लोकोऽयं कमातुकायां नास्ति
४. हारिणोङ्गदितो - ग
५. नैतादृश्यो युवत्यैश्च - ग
६. स्वर्गलोकाच्च - ग
७. मामायतं तु स्वर्गायत स्वर्गो भूमौ प्रदृश्यते। इयं पङ्क्षः ग - मातृकायामग्रे प्राप्यते
८. क - मातृकायामेवास्ति।

बहुभिर्जपयज्जैश्च वलेशोनापि द्विजातथः।  
अत्रैव विविधा भोगाः सुखानि च बहूनि हि॥१८॥  
भुञ्जन्ते नरनार्थश्च तेषां स्वर्गेन किं फलम्।

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा गिरस्तेषां ब्रह्माकमलसम्भवः॥१९॥  
उवाच प्रहसन्वाण्या भेघनादगभीरया।

ब्रह्मा उवाच-

मनुं स्वायंभुवं यूयं चान्तिके मम् पृच्छथः॥२०॥  
स वै छिनन्ति युव्याकं सन्देहं वचनैः प्रियैः।

सूत उवाच-

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मनुः स्वायंभुव स्वराट्॥२१॥  
आजग्राम विमानेन चान्तिके पितुरात्मनः।  
तं च सङ्गम्य प्रपञ्चुः सन्देहं मानसोदध्वम्॥२२॥

सूत उवाच-

भद्रं ते किं कृतं राजन् प्रजाश्च सुजाता त्वया।  
अस्मत्तश्चाधिकां कृत्वा मुमोद सुकृती भवान्॥२३॥  
यूयं च यदि स्वर्गस्य मर्यादां न करिष्यथा।  
स्वर्गार्थेण च पुनः राजन् न कोऽपि प्रव्यतिष्ठति॥२४॥  
देवाः श्रेष्ठाः मनुष्याः वा स्वर्गो वा भूतलोऽपि वा।  
अयोध्यायां चथा राजन् दृश्यते पुरुषाः स्विद्याः॥२५॥  
न तथा क्वापि वर्तन्ते स्वर्गे भूमिधरः प्रभो।

सूत उवाच-

वाक्यं निशम्य तेषां तु जगाद च मनुस्वयम्॥२६॥

१. पूर्व - ग
२. प्राप्य - ग
३. तं संगम्य - ग
४. सर्वाः ऊचुः - ग
५. अस्मत्तोऽधिकाः - ग
६. स्वर्गार्थ - ग
७. भूमे धरः - क

भारत्या<sup>१</sup> प्रीणयनेव देवानां युवतीस्तदा।

मनुस्त्वाच-

स्वर्गार्थं क्रियते कर्म जनैश्च स्वर्गगमिभिः॥२७॥

भूतले भूतलश्चैव स्वर्गे स्वर्गस्तथैव च।<sup>२</sup>

जन्ममृत्युजराव्याधि भूतले वर्तते सदा॥२८॥

मलमूत्रशरीराणि नराणां नाशवन्ति च।

पञ्चविंशति वर्षस्थाः नराः नार्यश्च बोडशः॥२९॥

तेषां देहेन दुर्गधो न छायामलिनाम्बरम्।

न निमेषस्तु<sup>३</sup> नेत्रेषु स्वर्गस्था सुखिनो जनाः॥३०॥

शोको न क्रियतां देवा यूं श्रेष्ठाः न संशयः।

प्रहसन् प्राह देवर्षी राजो वाक्यं निशम्य च॥३१॥

तस्मिन् काले महाहर्षो देवान् प्रत्यमितद्युतिः।

श्री नारदोवाच-

राजो चोक्तं यथातथं तत्तथैव न संशयः॥३२॥

परन्तु स्वर्गतः श्रेष्ठायोध्येयं सुरदुर्लभा।

माहात्म्यत इयं श्रेष्ठा स्वर्गादपि वरानना॥३३॥

स्वर्गवासात् पुनर्जन्ममरणं विद्यते नृणाम्।

स्वर्गच्युताश्च भूलोकं पतन्ति सुकृतक्षयात्॥३४॥

अत्र मृताश्च वैकुण्ठमूर्द्धां गच्छन्ति मानवाः।

कृमिकीटपतङ्गाश्च म्लेच्छाः सङ्कीर्णजातयः॥३५॥

१. भरत्या - ग

२. भूलोको भूतलश्चैव स्वर्गो वर्गस्तथैव च। -ग

३. निमेषश्च - ग

४. प्रहसन् प्राह ----- न संशयः॥३२॥ -इति पाठः ग- मातृकायां नास्ति।

५. माहात्म्यं तदयं - क

६. स्वर्गच्युताश्च -ग

७. मूर्द्ध - ग

कौमोदकी कराः<sup>१</sup> सर्वे प्रयान्ति गरुडासनाः।  
 लोकं शान्तानकं<sup>२</sup> नाम दिव्यभोगसमन्वितम्॥३६॥  
 यद् गत्वा न पतन्त्यस्मिल्लोके मृत्युमुखे नराः।  
 माहात्म्यादधिकं स्वर्गात् साकेतं नगरे<sup>३</sup> शुभम्॥३७॥  
 अयोध्यायाः समं<sup>४</sup> किञ्चिन्स्वर्गं भूतलं तथा।  
 योषितः खलु चात्रस्थाः विधाता विदधे बहुः॥३८॥  
 आत्मनो दोषनाशाय रचिताः<sup>५</sup> भूतले स्त्रियः।  
 यदाहित्यां<sup>६</sup> विधाता च निर्ममे परमाद्भुताम्॥३९॥  
 तदा<sup>७</sup> लोकैश्च विज्ञातं घुणाक्षरमिदं विधेः।  
 तदोषमार्जनायैव निर्ममे चात्र योषितः॥४०॥  
 कुर्वन्तु संशयं देव्यो सौन्दर्ये न कदाचन।  
 अत्र नार्यं श्रियो मूर्त्यो नराश्च हरिविग्रहाः॥४१॥  
 श्री सूत उवाच  
 नारदस्य ऋषेर्वाक्यं निशम्याप्सरसस्तदा।  
 मतिं चक्रुश्च साकेते वसितुं स्वर्गनिष्पृहाः॥४२॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे एकोनविंशोध्यायः।

□ □

- 
- १. यदा: -ग
  - २. शान्तनवम् -ग
  - ३. नगरं - ग
  - ४. अयोध्यासमं - ग
  - ५. स्वर्गं भूतले - ग
  - ६. पूरिता - ग
  - ७. यदाहित्या - क
  - ८. यदा - ग

## विंशोऽध्यायः

स्फाटिकानां च सौधानि चन्द्ररश्मयुतानिः च।  
 रात्रौ रात्रौ विलोक्यन्ते जनैरारुह्य सर्वतः॥१॥  
 अट्टेषु चन्द्रकान्तेभ्यः जलधारा पतत्वधः।  
 निशायां रश्मसंयोगाद्विजराजस्य नित्यदाः॥२॥  
 लज्जायात्र गृहिण्यश्च रात्रौ दीपान् समाप्य च।  
 लज्जन्तेत्र पुनः सर्वा मणिभिः कुण्डननिमित्तैः॥३॥  
 इतस्ततो जना यै वै स्फाटिकानां च भित्तिषु।  
 तेषां तादृशबिष्वेन सजीवा इव वै गृहाः॥४॥  
 यत्र स्वर्णमया स्तम्भा सौधेयासौ निरूपिताः।  
 कपोलान्यत्र पश्यन्ति युवत्यः कामपाण्डुरान्॥५॥  
 पाकशालाक्षितिस्तत्र नीलरत्नश्च कुटिटमाः।  
 न कुर्वन्ति भ्रमात् तस्यां नव वध्वश्च गोमयम्॥६॥  
 प्रान्तेषु पटलानां च नृत्यन्ति शिखिनो मुहुः।  
 वितत्यस्वस्य बर्हणि मृदङ्गानां स्वनेन च॥७॥  
 विलोक्य कालमेघानां धूमानामगरुस्य च।  
 गगनोऽड्डीयमानानां पक्षिणां रत्नजाङ्गणे॥८॥

१. चक्ररश्मप्रतानि च - ग
२. नित्यशः - ग
३. लज्जायात्र गृहाण्यश्च - क
४. कुण्डयनिमित्तैः - ग
५. जना यौ - क
६. सौशौचे - ग
७. कुण्डमा - क
८. कालमेघाभं - ग

प्रतिबिम्बस्य तेषां तु ग्रहणाय यतस्ततः।  
 हिंसो धावति पापात्मा मार्जारः किलमारकः॥१॥  
 कामिनश्चात्र शतशो वलभीषुः वधूजनैः।  
 भ्राजन्ते परमानन्दं महापौरुषिकाः इव॥२॥  
 युवतीनां मुखान्यत्र प्रमादाय नृणां मधु।  
 विभ्रन्ति सततं कान्तिं नेत्राणां पुटके तथा॥३॥  
 लोकवार्ता यथा लोका प्रवदन्ति गृहे स्वके।  
 प्रपठन्ति तथा रम्यं पञ्जरस्थाश्च सारिकाः॥४॥  
 पतिना सह यज्जातं नवोढायाः रतादिकम्।  
 तदिवा वक्तुकामस्य कीरत्स्य मुखपङ्कजे॥५॥  
 वधू दधाति सकलं विद्वुमस्य पुनः पुनः।  
 अत्र वस्त्राणि रम्याणि क्षौमकौशेयकानि च ॥६॥  
 कुचादीनि प्रदृशयन्ते तत्राङ्गानि यर्थार्थतः।  
 राजमार्ग महादीर्घं तत्र गच्छन्ति भूरिशः ॥७॥  
 अश्वाः गजाः रथाः सर्वे असङ्कीर्णं प्रयान्ति च।  
 वृक्षाश्चात्र महादीर्घाः कल्पवृक्षोपमाः सदा ॥८॥  
 प्रयच्छन्ति नराणां च सर्वान् कामांश्च वाजितान्।  
 इन्द्राच्छ्रेष्ठो हि राजर्भिः साकेते वसते सदा ॥९॥  
 तेनेयं च पुरी चाद्या स्वर्गाच्छ्रेष्ठा च राजते।

सूत उवाच-

देवानां च विमानानि प्राप्तानि नगरोपरि ॥१८॥  
 पुनः प्रोवाच वै स्त्रष्टा वीक्ष्यमानो वनानि च ॥१९॥

श्रीब्रह्मोवाच-

पश्यद्यं देवताः सर्वे वनं चाशोकसंज्ञकम्।  
 शान्तानिकवनः चात्र मन्दारवनमेव च ॥२०॥  
 वनं च पारिजातानां चन्दनानां तथैव च ।  
 चम्पकानां वनं दिव्यं यत्र यान्ति न षट्पदः॥२१॥

१. वल्लभी युवती जनैः - क

२. महापौरुषकाः - क

३. सन्तानकवनम् - ग

वनं रमणकं देवा रमणं यत्र वै हरेः।  
 वनं प्रमोदकं चापि प्रमोदं यत्र भूरिशः॥२२॥  
 आग्नाणां च वनं दिव्यं तथैव पनसैः कृतम्।  
 कदम्बानां वनं दीर्घं केशरैरुपशोभितम्॥२३॥  
 तमालानां वनं दिव्यं बल्लिभिः परिवेष्टितम्।  
 वनान्येतानि रम्याणि संख्यातानि च द्वादशः॥२४॥  
 तथा चोपवनान्येन पुष्पाणां क्रमशः सुराः।  
 यत्र यान्ति युवानश्च रमणीयिः रमितुं सदाः॥२५॥  
 आखेटकाः राजानो वनेषु परितो बलैः।  
 वृताः<sup>३</sup> क्रीडन्ति ते नित्यं मनन्त इव नन्दने॥२६॥  
 इत्येवं च<sup>४</sup> वदन् ब्रह्मा देवान् प्रति महातपाः।  
 सरव्वाः भूमिभागांश्च तथा यानान्यवातरन्॥२७॥  
 देवानां ब्रह्मरुद्राणां विमानानि समन्ततः।  
 ब्रह्माद्याः सकलाः देवाः विमानेभ्यः अवातरन्॥२८॥  
 अप्सु नद्यास्तथा चक्रुः स्नानं चैव विधानतः।  
 युवत्यः किल् देवानां निर्णेजुर्निजविग्रहम्॥२९॥  
 स्नात्वा सप्यकृ बहिश्चाद्यो गत्वा वासासि पर्यधुः।  
 दत्त्वा दानानि विग्रेभ्यो नानारत्नमयानि च॥३०॥  
 एकदश्यां पुण्यतिथौ सन्ध्या भेजुस्तथा शुभाम्।  
 इत्येवं तीर्थयात्रा तु कृता देवैर्महर्विभिः॥३१॥  
 इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे विंशोऽध्यायः।

□□

१. रमते -ग
२. वृतः
३. वि
४. ग - मातृकायां नास्ति।
५. अवतारयन् -ग
६. जेपु - ग

## एकविंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

तस्मिन् काले वसिष्ठस्तु नोदितश्च नृपाज्ञया।  
 आजगाम विधे पाश्वं विधिपुत्रो विधानतः॥१॥  
 समागत्य विधे: पाश्वं वकन्दे प्रणतः पदौ।  
 ब्रह्मा शीघ्रं समुत्थाय परिष्वज्य च बाहुभिः॥२॥  
 उपकण्ठे तमावेश्य पर्यपृच्छदनामयम्।  
 राज्ञो दशरथस्यापि तथा रामस्य भूरिशः॥३॥

सूत उवाच-

पृच्छन्ते पितरं चैव वसिष्ठो भगवान् ऋषिः।  
 उवाच श्लक्षण्या वाचा पितरं भूपनोदितः॥४॥

श्रीवसिष्ठ उवाच-

येषां कुशलकामोसि भव्यं तेषां तु विद्यते।  
 आगमिष्यति राजा तु पुत्रस्त्वामभिवन्दितम्॥५॥  
 विद्यातापि मुनेर्वाक्यं श्रुत्वा विस्मितमानसः।  
 प्रहसन् प्राह धर्मात्मा वसिष्ठं कमलासनः॥६॥

श्रीब्रह्मोवाच-

अहमप्यागमिष्यामि गृहं राज्ञो महात्मनः।  
 देवैस्सह मुने याहि राज्ञोऽ (ब्रूहि) ममाज्ञयाऽ॥७॥  
 यस्य पुत्रो रमानाथो रामचन्द्रोऽथ भ्रातुभिः।  
 वर्तते अथ गृहं तस्य दर्शनार्थं व्रजाप्यहम्॥८॥  
 रामो नारायणः साक्षात् ममोपास्यः सदाद्विजः।  
 भवान् ज्ञाता मुने सर्वं मम रामस्य भूरिशः॥९॥

१. त - ग

२. पृच्छन्ति - क

३. ब्रूहि ब्रूहि - ग

४. गृहे - ग

रामस्य नाभिपद्मेन जातोहं प्रलयार्णवे।  
 मम देहाद् भवतोपि जाता दक्षादयः सुताः॥१०॥  
 एवं न ज्ञायते पुत्र त्वया किं मम चोच्यते।  
 नराकारस्य रामस्य वयं त्वं च सहायकाः॥११॥  
 ऐते देवास्तथा सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः।  
 संगोपनीयमस्माभिः रामतत्त्वं च साम्प्रतम्॥१२॥  
 यथासुखं भवेद् भूरि पित्रोश्चैव तथा नृणम्।

सूत उवाच-

एवं विश्राव्य वै ब्रह्मा रघूणां देशिकं मुनिम्॥१३॥  
 अहमप्यागमिष्यामि चेति वाक्यं पुनः पुनः।  
 वसिष्ठं प्रेषयित्वा तु यानं चारुरुहे निजम्॥१४॥  
 वसिष्ठोऽपि महातेजा आजगाम नृपान्तिकम्।  
 आगत्य कथयामास वेदा चायाति भो ध्रुवम्॥१५॥  
 तत्र बालस्य दृक्षार्थं सर्वे देवाः सवासवाः।  
 दीर्घं भाग्यं विजानीया ह्यात्मनः पुत्रसम्भवात्॥१६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे दूता ब्रह्मादीनां समागताः।  
 वर्धयित्वा तु राजानं प्रोचुः प्राञ्जलयो नृपम्॥१७॥

देवदूत उवाच-

आगताः शतशो देवाः श्रीमतां शुभतोरणाम्।  
 आज्ञाप्यतां<sup>१</sup> महाराज सभायां प्रविशन्तु ते॥१८॥

श्री राजा दशरथोवाच-

इदं गृहं तु देवानां चेदं राज्यं पुरे मम।  
 स्वगृहे को विचारोऽस्ति चाज्ञां कस्य प्रतीच्छथ॥१९॥

श्री सूत उवाच-

इत्युक्त्वा च स्वयं राजा प्रचचाल वरासनात्।  
 रामं स्वाङ्के घनश्यामभिन्द्रनीलसमप्रभम्॥२०॥

१. दर्शकम् - क

२. रक्षार्थम् - ग

४. आज्ञापिता - क

३. देवा ऊचुः - ग

५. परम् - क

कलृप्तां बलिं समादाय देवानां नयतुं यथौ।  
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रविवेश नृपालयम्॥२१॥  
 देवैः सह महाबाहुः प्रहसन् कमलासनः।  
 प्रणनाम महाराजो ब्रह्माणं च चतुर्मुखम्॥२२॥  
 पादयोः पातयामास रामचन्द्रं च वेदसः।  
 सिंहासने समावेश्य विधिं राजा महामनाः॥२३॥  
 तदेन्द्रोऽपि गणेशोऽपि महादेवादयः सुराः।  
 राजा सम्पूजिताः सर्वे विविशुश्रव यथासुखम्॥२४॥  
 अप्सरसस्त्रं रम्भाद्याः पूर्वचित्पादयस्तथा।  
 समाजगमुश्च गन्धर्वाः नानावेशधराः सभाम्॥२५॥  
 राजानं वर्द्धयित्वा तु स्थाने स्थाने यथाविधि।  
 हसन् ग्राह महाराजः ब्रह्माणं सर्वदेवताः॥२६॥  
 अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं गृहम्।  
 अद्य मे सफलान्यासन् सुप्रभातानि वै मम॥२७॥  
 साधूनां च सुराणां च दर्शनं दुर्लभं नृणाम्।  
 कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं यूयं दर्शनमागताः॥२८॥  
 युष्माकं दर्शनं रम्यं नृणां भवति भाग्यतः।  
 तीर्थस्थानमिषेणोव मद्गृहेषु समागताः॥२९॥  
 किं पुनर्यहिमा शब्दयो वर्णितुं स्वमुखात्ततः।

सूत उवाच-

ब्रह्मा राजोदितं वाक्यं श्रुत्वा साधु निरूपितम्।  
 अब्रीवीच्य स्मितं कृत्वा राजानं हंसवाहनः॥३०॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे एकविंशोऽध्यायः।

□ □

- 
१. कृत्वा - क
  २. प्रहसन् - ग
  ३. सफला स्वमिन् सुप्रभाता निशा मम। - ग
  ४. यज्ञ - ग
  ५. अब्रीवीत् सस्मितं-ग

## द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीविधि उवाच-

सत्यमुक्तं<sup>१</sup> महाराज तव भाग्यान्न चाधिकम्।  
 भूलोके देवलोके च पाताले च नरेश्वरः॥१॥  
 भाग्यं हि विद्यते राजन् नरस्य हि कथंचन।  
 यस्य पुत्राः महात्माः श्रीरामभरतादयः॥२॥  
 जाताः पुण्याच्च लोकानां सर्वथा परिरक्षकाः।  
 युगे युगे च गावो हि ब्राह्मणाः साधवस्तथा॥३॥  
 पृथिवी च महाराज ह्यनेन परिरक्षिताः।  
 येऽस्मिन्<sup>२</sup> प्रीतिं करिष्यन्ति ते सुभाग्याः<sup>३</sup> न संशयः॥४॥  
 चरितं चास्य लोकस्य<sup>४</sup> पापपर्वतदारणम्।  
 यावल्लोका चरिष्यन्ति<sup>५</sup> यावत्तिष्ठति मेदिनी॥५॥  
 तावद्रामकथा लोके प्रचरिष्यति पापहा।  
 किं बहुक्तेन शो राजन्<sup>६</sup> नारायणसमोर्धकः॥६॥

सूत उवाच-

दुहिणस्य मुखोद्गीतं समाकर्ण्य नराधिपः।  
 प्रहर्षं परमं लेखे श्रुत्वा पुत्रं गुणान्वितम्॥७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सभायां नारदो मुनिः।  
 आजगाम विधे: पुत्रो दर्शनार्थं स तुंबुरुः॥८॥

- 
१. सत्यं चोक्तं-ग
  २. यो-ग
  ३. चामोघाः-ग
  ४. लोकेऽस्मिन्-ग
  ५. धरिष्यन्ति-ग
  ६. तावत्तिष्ठति-ग

जनकाङ्कगतं रामं ददर्श विनयान्वितः।  
 दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनः दृष्ट्वा मुमोह च पुनः पुनः॥११॥  
 श्यामसुन्दररामस्य रूपाब्धौ मञ्जतोऽभवत्।  
 बहिर्निर्गत्य धैर्येण रामस्य परमात्मनः॥१०॥  
 तेन स्तोत्रं समारब्धं ब्रह्मादीनां च सन्निधौ।

श्रीनारद उवाच-

वन्दे सुराणां शरणं च सुरेणां श्यामसुन्दरम्॥११॥  
 योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च परं गुरम्।  
 ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानगम्यं सनातनम्॥१२॥  
 तपसां फलदातारं सर्वसम्पत्तिदं शिवम्।  
 तपोबीजं तपोरूपं तपोधर्मं तपोवरम्॥१३॥  
 वरेण्यं वरदाभीष्टं भक्तानुग्रहकारकम्।  
 वेदा न शक्ताः ये स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्॥१४॥  
 कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकाणवितारणम्।  
 आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्॥१५॥  
 ब्रह्मज्योतिस्वरूपं च दुष्टदानवनाशनम्।  
 अपरिच्छिन्नशक्तिं च कायवाङ्मनसः परम्॥१६॥  
 ततोऽ गुणपरं रामं रजसः तमसः परम्।  
 ब्रह्मणानामुपास्यं च योगिनां हृदयज्ञम्॥१७॥  
 कोटिकन्दर्पलावण्यं द्विभुजं रघुनन्दनम्।  
 ज्योतीरूपमरूपं च रमानाथं जगद्गुरुम्॥१८॥  
 ब्रह्मज्योतिः प्रभुं रामं वासुदेवं जनार्दनम्।  
 वैकुण्ठं माधवं विष्णुं दैत्यारि मधुसूदनम्॥१९॥

१. ब्रूडितोऽभवत्-ग
२. सारं-ग
३. वरदमीड्यं-ग
४. शक्त्ययं-क
५. ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं-ग
६. तमो-ग
७. जगद्वितं-ग

नमो हंसाय शुद्धाय शुचीनां शुचये नमः।  
 विष्वक्सेनाय महते रामायमिततेजसे॥२०॥  
 मत्स्यवृत्तमवराहानां रूपिणे परमात्मने।  
 रामचन्द्राय हरये नमस्ते सिंहरूपिणे॥२१॥  
 नमो वामनरूपाय जामदग्न्याय ब्रह्मणे।  
 नमस्ते रामचन्द्राय श्रीकृष्णाय नमो नमः॥२२॥  
 नमस्ते बुद्धरूपाय नमस्ते कलिकरूपिणे।

श्रीसूत उवाच-

स्तोत्ररत्नमिदं कृत्वा विरसाम महामुनिः॥२३॥  
 रघूनां<sup>१</sup> प्रवरो राजा मुनिं प्रोवाच लज्जितः।  
 वाक्यं च श्रूयतां मध्यं तव भक्तस्य मे विभो॥२४॥

श्री राजा दशरथ उवाच-

मम पुत्रस्य व्याजेन कृतं स्तोत्रं हरेरिदम्।  
 एवमेव च कर्तव्यं सकलैः<sup>२</sup> प्राणिभिः सदा॥२५॥  
 इदानीं मम पुत्रस्य मन्त्ररक्षां च क्रियताम्।

सूत उवाच-

नारदोपि महायोगी विरक्तानां शिरोमणिः॥२६॥  
 पस्पर्शं बालं पाणिभ्यां रक्षाव्याजेन मस्तके।  
 कण्ठं वक्षस्थलं चैव ह्राद्ग्नी<sup>३</sup> स्पृष्ट्वा जगाम सः॥२७॥  
 ब्रह्मादयस्तु ते देवाः प्रशंसुर्मनसा मुनिम्।  
 अहो मुनि महाबुद्धि रामस्य चरणौ शुभ्रौ॥२८॥  
 स्पृष्ट्वा शीघ्रं प्रयातो हि रसिकानां शिरोमणिः।  
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं नारदेन समीरितम्॥२९॥  
 स्तोत्ररत्नमिदं ज्ञेयं रामचन्द्रस्य शौनकः।  
 यो नित्यं पठते विद्वान् यो वा धारयते सुधी॥३०॥

१. ग-मातृकायां 'रघूनां....विभो' नास्ति।

२. सफलैः-ग

३. बाहुंग्नी-ग

न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।  
 नियमाद्यः पठेत् स्तोत्रं प्रातस्तथाय बुद्धिमान्॥३१॥  
 प्राप्नोति सकलानर्थान् बालरामप्रसादतः।  
 स्तोत्ररत्नमिदं दिव्यं मासमात्रं शृणोति यः॥३२॥  
 धुवं विज्ञं भवेत्तस्य रामचन्द्रप्रसादतः।  
 महामूर्खेश्च दुर्मेधां मासं भक्त्या शृणोति यः॥३३॥  
 बुद्धिं विद्यां च लभते गुरुपदेशमात्रतः।  
 अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः॥३४॥  
 इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्ति सुदुर्लभाम्।  
 नानाप्रकारधर्मे च यात्यन्ते च हरेगृहम्॥३५॥  
 यः शृणोति त्रिसन्ध्यं च नित्यं स्तोत्रं सुमङ्गलम्।  
 किं बहुवतेन भो विग्र नास्त्यस्मादधिकं परम्॥३६॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे द्वाविंशतोऽध्यायः॥२२॥

१. पुण्य-ग
२. दुर्मेधो-
३. नानाप्रकारधर्मे-क

## त्रयविंशोऽध्यायः

श्रीसूतोबाच-

गतेथ नारदे राजा ब्रह्मादीन् वाक्यमन्नवीत्।  
प्राञ्जलिप्रथतो भूत्वा धर्मिणां प्रवरो नृपः॥१॥

श्रीदशरथ उवाच-

एकादश्यां च भो देवाः फलाहारो गृहे मम।  
भवद्भिः क्रियतामत्र विहितोऽयं ममाञ्जलिः॥२॥

येषां गृहे न भुजन्ते देवा वा ऋषयो द्विजाः।  
तेषां गृहं भवेच्छून्यं फेरुराजगृहोपमम्॥३॥

ब्रह्मोबाच-

अद्य चैकादशी राजन् फलाहारो न शस्यते।  
एकादश्यां फलाहारो मध्यमः प्रोच्यते बुधैः॥४॥

भोजनं च महानिंद्यमन्नानां च नराधिष।  
तस्मादद्य न भोक्तव्यं भोक्तव्यं भोजनद्वयम्॥५॥

रात्रौ जागरणं चैव दिवा च हरिकीर्तनम्।  
तृप्ताश्चास्मोः वयं सर्वे तव दर्शनतो नृप॥६॥

इत्येवं ब्रुवतः सर्वान् पुनः प्रोबाच भूमिपः।  
रक्षां च क्रियतां स्वामिन् वालकस्य ममाद्य वै॥७॥

चिरंजीवि भवेद्येन तथा वै क्रियतां शुभम्।  
गिरामाकर्णर्थं भूपस्य वात्सल्यगुणधूषिताम्॥८॥

तथा भवतु वाक्यं ते प्रत्यूचुश्च सुरेत्वराः।  
अथ ब्रह्मा सभायां गणेशं च गणाधिपम्॥९॥

१. त्रृप्तिश्च स्मो-क

२. गीर-ग

अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यमेकदन्तगजाननम्।  
 श्रीब्रह्मोवाच-

एकदन्त महावीर्यं नमस्ते परशुपाणये॥१०॥

सिद्धन्ति सर्वकार्याणि त्वत् प्रसादाद् गणाधिपः।  
 शिवपुत्राय भव्याय मतङ्गास्याय ते नमः॥११॥

नमस्तेः पार्वतीपुत्रं विष्णुप्रियाय ते नमः।  
 गणानां पतये तुभ्यं नमस्ते चैकदन्तिने॥१२॥

विघ्नार्णवनिमग्नानां तारणाय नमो नमः।  
 ये ये भजन्ति त्वां देव तेषां विज्ञो न विद्यते॥१३॥

सर्वमङ्गलकार्येषु भवान् पूज्यो जनैः सदा।  
 मङ्गलं तु सदा तेषां त्वत्पादे च धृतात्मनाम्॥१४॥

बहुधैवं च विज्ञाप्य पुनः प्रोवाच पद्मजः।  
 रक्षां च क्रियतामस्य साम्प्रतं बालकस्य वै॥१५॥

आज्ञाप्यैवं विधातापि विरराम गजाननम्।  
 गजाननोपि रामं हि पश्यन् प्रेष्णा मुहुर्मुहुः॥१६॥

जहास मनसा देवो वाक्यं श्रुत्वा विधेरिदम्।  
 बुद्ध्या विचारयामास विधिवाक्यं महामतिः॥१७॥

रक्षां च क्रियतामस्य बालकस्य हि साम्प्रतम्।  
 विधिना चैव प्रोक्तोऽहमिति वाक्येन साम्प्रतम्॥१८॥

अयमर्थो हि वाक्यस्य मनसैवं विचार्यते।  
 अकारो वासुदेव स्यात् षष्ठी ह्यस्य भवेद् भुवम्॥१९॥

बालः केश इति प्रोक्तः कशब्देन प्रजापतिः।  
 बाले बाले ककारस्तु जायते तस्य नित्यदा॥२०॥

इति बालकशब्देन परब्रह्म विधीयते।  
 बालकस्यास्य चार्योऽयं मया ज्ञातः सुनिश्चितम्॥२१॥

- 
१. नमः पार्वतीपुत्राय विष्णुभक्ताय ते नमः।-ग
  २. क्रीयनामस्य-क
  ३. अयमर्थोत्थ-क
  ४. परब्रह्मिधीयते-ग

परं त्वथो न वक्तव्यो मनसैव स्मराव्यहम्।  
 कणों प्रचालयन् दीर्घों पक्षाविव च पक्षिराट्॥२२॥  
 शुण्डं प्रसारयामास रामस्योपरि वेगतः।  
 भ्रामयामासु परितो रक्षार्थं रामनामिनः॥२३॥  
 ततो रामो महातेजा बालरूपी तु कौतुकी।  
 चकार रोदनं किञ्चिद् दृष्टिसङ्क्लोचनादिकम्॥२४॥  
 रोदनार्थं गणेशस्तु पायादिव भयं नहि।  
 गजतुण्डोऽपि संकुच्य संजहार निजं करम्॥२५॥  
 धातापि पुनरुत्थाय रक्षार्थं बालकस्य च।  
 चतुर्भिर्वर्दनैस्तत्र तात तातेत्युवाच ह॥२६॥  
 ब्रह्मणो मुखपङ्क्तिं च संजहास रघून्तमः।  
 पाणिनां कुशदीर्घेण चक्रे रक्षां पितामहः॥२७॥  
 रक्षां कृत्वा निजस्थाने विवेश कमलासनः।  
 कपर्दीं पुनरुत्थाय पञ्चभिर्वर्दनैः ब्रुवन्॥२८॥  
 अनेन बालरूपेण रक्षितो निजसेववैः।  
 सदा मे हृदये तिष्ठ यत्र कालभयं 'नहि॥२९॥  
 तदा रामो न किञ्चिच्च हास्यं चक्रे च बालकः।  
 महादेवे निजस्थाने आसीने शिखिवाहने॥३०॥  
 षड्भिर्वां वदनैर्वाक्यं विलुवन् रघुनन्दनम्।  
 अहो राम महाबाहो किं रोदसि गजाननात्॥३१॥  
 षड्भिर्वर्दनैर्युक्तं मां पश्यस्व बालक।  
 मत्तः किं न विभेषि त्वं त्रियुगं वदनं मम॥३२॥

१. वदने-ग
२. किञ्चिद् दोषसङ्क्लोचनादिकम्-ग
३. गणेशात् माया-क
४. न-ग
५. काले भयं-क
६. हि-ग
७. शिखिवाहनः-ग

अद्वृसनगता देवी शिवस्य गिरिजा सती।  
अब्रवीत्परया वाचा कार्तिकेयं निजात्मजम्॥३३॥

श्री देव्युवाच-

दशाननादयं बालो न विभेष्यति शत्रुहा।  
त्वत्तः पडाननात्पुत्र कथं बिभ्यति बालकः॥३४॥

वचा देव्याः निशम्यैवं जहसुस्ते सभादयः।  
रामोपि किलकिलां कृत्वा पितुरङ्गे जहास ह॥३५॥

नृपादयस्तु जहसुः पश्यन्तः कौतुकं त्विदम्।  
राजा सभाजिताः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः॥३६॥

रामरक्षां पठित्वा तु गन्तुं चक्रुर्मतिं निजाम्।  
देवाः ब्रह्मादयः सर्वे स्वं स्वं वाहमवस्थिताः॥३७॥

जग्मुः सर्वे स्वकं स्थानं रामे निक्षिष्य मानसम्।  
इतः परं च वक्ष्येहं यज्जातं नृपतेर्गृहे॥३८॥

श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे त्रिविंशोध्यायः॥२३।

□ □

## चतुर्विंशतिः अध्यायः

सूत उवाच-

राजा दशरथो हृष्टः प्रेषयामास बालकम्।  
 अन्तःपुरे महादीर्घे यत्र कौशल्यादयः स्त्रियः॥१॥  
 कौशल्यापि निजोत्सङ्गोः रामं श्यामं निवेश्य च।  
 प्रस्तुतौ पाययामास स्तनौ षेमभरप्लुतौ॥२॥  
 तस्मिन्नवसरे सर्वाः राजदाराः समाजगुः।  
 कौशल्यामबुवन् शीघ्रं मन्त्ररक्षा विधीयताम्॥३॥  
 रामस्य भयभीतस्य गणनाथस्य शुण्डतः।

सूत उवाच-

कौशल्याद्यास्तदा सर्वाः पेठुः रक्षां हि तादृशीम्॥४॥

श्रीकौशल्योवाच-

पादौ रक्षतु ते विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः।  
 प्रजापतिस्तु ते मेद्यं गुदं निर्ऋति एव च॥५॥  
 नाभिं पातु समानं च<sup>३</sup> तथापानं<sup>४</sup> सदागतिः।  
 अजचन्द्रौ मनोबुद्धी पातु चित्तं हरिः स्वयम्॥६॥  
 अहङ्कारं महादेवः शूलहस्तो दिगम्बरः।  
 वरुणो रक्षतु ते जिह्वां या दशनपड्क्तरप्पतिः॥७॥  
 मुखं पातु सदा वहिनर्नासां च वद्वासुतौ।  
 नेत्रे रक्षतु मार्तण्डस्तथा कर्णौ दिशस्त्व॥८॥

१. निजाङ्के-ग
२. च क्रीयताम्-ग
३. समानस्तु-ग
४. पातु-ग
५. यादसंपतिरप्पति-क, यादसां पतिरप्पति-ग

बाहू रक्षतु वृत्रघ्नो देवराज शचिपतिः।  
 सर्वाङ्गेषु महाविष्णुः वातो रोमाणि सर्वदा॥१॥  
 अग्रे रक्षतु चक्रं त्वां पश्चात् कौमोदकी गदा।  
 डाकिनी भूतप्रेतेभ्यो नन्दकोऽवतु सर्वदा॥२॥  
 सर्वापद्मयो नृसिंहस्तु भ्रमण्यातुः त्रिविक्रमः।  
 कालाद्रक्षतु कोदण्डः व्याधिभ्यस्तु शिलीमुखम्॥३॥  
 शयानं पातु श्रीरङ्गः जागरूकं श्रियः पतिः।  
 गरुडो रक्षतु सर्वेभ्यः<sup>३</sup> शेषो रक्षतु क्रोधतः॥४॥  
 धन्वन्तरिः कुपथ्यातु लक्ष्मी रक्षतु भोजनात्।  
 नन्दादयो द्वारपालाः<sup>४</sup> पातु त्वाञ्च सदैव हि॥५॥  
 डाकिनीभूतप्रेतेभ्यो देवी त्वामभिरक्षतु।  
 पृथिवी पर्वताः नद्यो वनानि सिन्धवः कुशाः॥६॥  
 मशकाः दंशकाः रोगाः क्षुपागोमहिषादयः।  
 दिनानि रात्रियो यामाः घटिका संवत्सरस्तथा॥७॥  
 अश्वाः गजाः नराः सर्वे द्विपदाः बहुपदाश्च ये।  
 अजडाश्च जडाश्चैव पक्षिणः कुक्कुरास्तथा॥८॥  
 गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः पितरो मातृकादयः।  
 सिद्धाः वैतालिकाः रक्षो देवर्थयः प्रजापतिः॥९॥  
 सर्वेष्येते तथा त्वन्ये त्वां रक्षन्तु सदैव हि।  
 पेतुरेव<sup>५</sup> सपत्न्यास्ता कौशल्याद्याः पुनः पुनः॥१०॥  
 रामरक्षां च विधिवत् पश्चाद्वानं ददुर्बहुः।  
 आजगाम वशिष्ठस्तु चाहूतो राममातृभिः॥११॥  
 विधिवद्रक्षणं चक्रे रामस्य परमात्मनः।  
 गवां सहस्रं कौशल्या रामहस्तेन दापयत्॥१२॥  
 ब्राह्मणेभ्यो महाहान् लक्ष्मणाम्बा तथाकरोत्।  
 वशिष्ठे विपुलां गृह्य दक्षिणां प्रययौ गृहम्॥१३॥

१. क्रमेण-ग

२. शिलीमुखाः-ग

३. सर्वेभ्यो-ग

४. हरे: पालाः-ग ५. पेतुरेव-ग

६. ददौ दानं द्विजातिभ्यो' इति पाठः ग-मातृकायां ब्राह्मणेभ्यो महाहानं, स्थाने प्राप्यते।

ब्राह्मणेभ्यो महाभागा रामस्याभ्युदयाय च।  
 सहस्रैवं सुवर्णस्य रामक्षेमाय वैकवयी॥२२॥  
 एवं हि रक्षणे जाते रामः स्तन्यं पयौ मुदा।  
 चक्रे किलकिलाशब्दं मातुः प्रेम्णो पितुसत्था॥२३॥  
 जनन्यो रामचन्द्रस्य दास्यो दासाश्च हर्षितः।  
 नटानां नर्तकीनां च समाजो बहुशोष्यभूत्॥२४॥  
 ददौ दानं च सर्वेभ्यो हर्षितो नृपसत्तमः।  
 रक्षास्तोत्रं च रामस्य मातृभिः पठितं तु यत्॥२५॥  
 अनेन रक्षामन्त्रेण बालान् रक्षन्तु पण्डिताः।

सूत उवाच-

रामस्य रक्षाव्याजेन बालानां रक्षणाय च॥२६॥  
 निवबन्धं च वाल्मीकि रामः जनन्युदाहृतम्।  
 बालकान् भयभीतांश्च रोगादिभिरूपद्रुतान्॥२७॥  
 डाकिनीभूतप्रेतैश्च कुदृष्ट्या च विलोकितान्।  
 बुधा रक्षत्वनेनैव रामरक्षाकरेण च॥२८॥  
 अल्पायुर्भवेत्तस्य नाकालमरणं भवेत्।  
 हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य रामरक्षां पठेतु यः॥२९॥  
 दानस्याभयसंज्ञस्य स पुण्यं लभते ध्रुवम्।  
 सर्वान् कामानवाजोति चात्मार्थं पठेतु यः॥३०॥  
 इमं हि चरितं पुण्यं बालरामस्य भाषितम्।  
 शृणुते श्रावयते वापि स पुमान् लभते गतिम्॥३१॥  
 इमं हि चरितं पुण्यमेऽल्लनिवारणम्।  
 धान्यं यशस्यमायुष्यं शीघ्रं कलिमलापहम्॥३२॥  
 इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे चतुर्विंशोध्यायः।

□ □

१. बाला-ग

२. श्राववापि-क

## पञ्चविंशतिः अध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

षट् श्रीयुक्त महाबुद्धे लोमहर्षण बुद्धिमन् ।  
 रामस्य चरितं पुण्यं मां त्वं श्रावय तत्त्वतः ॥१॥  
 रामेण शिशुरूपेण कथं दशरथाजिरे ।  
 क्रीडा कृता पुनर्दिव्या भ्रातृभिस्सहितेन च ॥२॥  
 कर्णपूरं सत्यं<sup>२</sup> रामचरित्रमृत्तमम् ।  
 तस्मात् कथय मह्यं त्वं कथने निपुणो ह्यसि ॥३॥

श्रीसूत उवाच-

कथयामि महापुण्यां शिशुरामस्य सुन्दराम् ।  
 कथामनुपमामिष्टां<sup>३</sup> वेदसारां सुगोपिताम् ॥४॥  
 मार्कण्डेयो मुनिः पूर्वं चित्रकूटे गिरौ पुरा ।  
 अपृच्छद् वाल्मीकिं च य त्वया पृच्छ्यतेऽधुना ॥५॥  
 श्रीरामो बालरूपो च भ्रातृभिः सह सुन्दरः ।  
 जानुभ्यां सह पाणिभ्यां प्राङ्गणे विच्चार ह ॥६॥  
 क्वचिच्च वेगतो याति क्वचिद्याति शनैः शनैः ।  
 क्वचिच्च भरतो रिंगन् शीघ्रतो जानुपाणिभिः ॥७॥  
 क्वचिच्च लक्षणो याति शत्रुघ्नेन स्वबन्धुना ।  
 बालाः क्रीडन्ति ते सर्वे मातृभिः रक्षिताः सदा ॥८॥  
 एहि चैहि मदीयाङ्कं श्रीरामकरूपानिधे ।  
 एवं पश्यन्ति भाग्येन मातरो निजबालकान् ॥९॥

१. बुद्धिमान्-क

२. नित्यं-ग

३. कथाममृतोमिष्टां-ग

बालकास्तु यथान्यायं क्रीडन्ति बालकाः यथा।  
 तथा क्रीडन्ति रामाद्याः बुद्ध्या प्राकृतया गृहे॥१०॥  
 पादयोः नूपुरारावं श्रृणुवन्ति: शनैः शनैः<sup>३</sup>  
 कुत्रापि जायते<sup>२</sup> शब्द इति संदिग्धमानसाः<sup>३</sup>॥११॥  
 कदाचित् किंकिणीरावं कटौ श्रुत्वा पलायते।  
 स्थित्वा स्थित्वा पुनः स्थित्वा मातुरङ्गं पलायते॥१२॥  
 पुनरुत्तीर्थं चैवाङ्गात्<sup>४</sup> रामः क्रीडति बालवत्।  
 तथा ते भ्रातरः सर्वे रामस्येच्छानुसारतः॥१३॥  
 क्रीडन्ति सततं बालाः जनानां सुखकारकाः।  
 आदर्शं क्वचिदिदात्मानं पश्यन्तश्चात्मनोमुखम्॥१४॥  
 बालकं च द्वितीयं हि मत्वा स्पृशति पाणिना।  
 अलव्यवा तस्य चाङ्गानि रोदनं कुरुते पुनः॥१५॥  
 क्वचिच्च वदनं रम्यं स्तम्भेषु प्रतिबिम्बितम्।  
 शुभगै रत्नयुक्तेषु<sup>५</sup> चालकैरावृतं मुखम्॥१६॥  
 द्वितीयं बालकं गत्वा हास्यं च कुरुते प्रभुः।  
 शत्रुघ्नो जानुपाणिष्यां रिङ्ग्नं भूमौ निजं मुखम्॥१७॥  
 द्वितीयं बालकं मत्वा काञ्चनभूमौ<sup>६</sup> विलोक्य च।  
 तस्याननेन संयुज्य चोच्यैः कूजति तत्र ह॥१८॥  
 मातुरङ्गे<sup>७</sup> समायाति प्रहसलक्ष्मणानुजः।  
 लक्ष्मणोऽपि निजं विष्वं दृष्ट्वा हुकुरुते मुहुः॥१९॥

१. शृणवन्याति शनैः-ग
२. क्वचिच्च त्रायते-ग
३. सन्दिग्धमानसः-ग
४. चाङ्गात्-ग
५. शतर्शं-ग
६. रक्तयुक्तेषु-ग
७. बालकैः-ग
८. काञ्चनभूमौ-क
९. निजं मुखम्-ग
१०. मातुरङ्ग-ग

भरतोऽपि निजं बिम्बं रलपृष्ठां हि भाषितम्।  
 हास्यं च कुरुते मन्दं मन्दं मन्दं पुनः पुनः॥२०॥  
 जलपात्रे च रामेण चन्द्रबिम्बं विलोकितम्।  
 ग्रहणे तस्य हस्तं तु जले तु कुरुते प्रभुः॥२१॥  
 न याति च यदा हस्ते<sup>३</sup> मातरं याचते<sup>४</sup> तु तम्।  
 चषकं स्वल्पकं माता रौप्यस्य रलसंयुतम्॥२२॥  
 तीरे निधाय रामस्य परोक्षेण सकौतुका।  
 रामाय ब्रुवती क्षिप्रं गृह्णतां चन्द्रमण्डलम्॥२३॥  
 इमाश्च तारिकाः<sup>५</sup> पुत्र रलरूपाः न संशयः।  
 सर्वं गृहाण मो राम आतृभिः क्रीडने कुरु॥२४॥  
 एवं<sup>६</sup> क्रीडन्ति बालाश्चावताराश्च हरेः खलुः।  
 पञ्जरस्थं शुकं दृष्ट्वा कुरुते तत्र तर्जनी॥२५॥  
 सारिका तत्र पठति कर्णं दत्त्वा शृणोति सः।  
 बाजपालाः करे बाजं रामचन्द्रस्य सन्मुखे॥२६॥  
 श्येनपालोपि रामाय श्येन दर्शयते निजम्।  
 विलोक्य हस्ते रामस्तत्त्वक्षिगणं मुहुः॥२७॥  
 कदाचित् पद्मयामुत्थाय पुनः पठति भूतले।  
 पुनस्तथाय पादौ च क्षिपते च शनैः शनैः॥२८॥  
 एवं भरतशत्रुघ्नो लक्ष्मणोपि महामुने॥२९॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे पञ्चविंशतिः अध्यायः॥२५॥

□□

- 
१. जलपात्रं-क
  २. विलोक्य तम्-क
  ३. न याति यदा हस्ते च-ग
  ४. चरते-ग
  ५. तारकाः-ग
  ६. क्रीडने-क
  ७. 'एवं...तर्जनी (२५)' पर्यन्तं पाठः ग-मातुकायां नास्ति।

## षड्विंशतिः अध्यायः

सूत उवाच-

काको नामा भुशुण्डस्तु कदाचिदाजगाम ह।  
 स्वस्थानाच्च हरेभवतोऽ रामदर्शनलालसः॥१॥

रामं शङ्कुलिहस्तं चै खादन्तं च पुनः पुनः।  
 तं दृष्ट्वा बालकं काक इति संदिग्धमानसः॥२॥

कथमेष परं ब्रह्मै वेदेन परिगीयते।  
 यदा विश्वभरो रामः शक्तिं मे दर्शयिष्यति॥३॥

इति निश्चित्य मनसा रामहस्ताच्च शङ्कुलीम्।  
 आकृष्यै नभसोद्दृढीनो रामो मे किं करिष्यति॥४॥

सर्वात्मा रामचन्द्रोऽपि तस्य विज्ञाय मानसम्।  
 जहसे चैकरूपेण तद्वितीयेन दुद्रुवे॥५॥

यत्र यत्र भुशुण्डोपि तत्र तत्र रघूद्वहः।  
 सप्तभूविवरान् काकः गतो रामान्वयाद्वृतम्॥६॥

पृष्ठभागे निरीक्षन् सन्थावमानो रघूतमम्।  
 योजनानां सहस्राणि त्रिंशत् परिभितानि च॥७॥

अथोभागे च पातालाच्छेषनागश्च विद्यते।  
 तस्य चाङ्के हि क्रीडनं शिशुरूपं रघूतमम्॥८॥

तदा काको विलोक्यग्रे पृष्ठभागे पुनः शिशम्।  
 अग्रे पश्चाद् गतिर्नासित मया किं क्रियतेऽधुना॥९॥

- 
१. हरेभवतो-क
  २. रामं च शङ्कुलीहस्त-ग
  ३. परब्रह्म-ग
  ४. प्रकृष्य-ग
  ५. राममयाद्वृतम्-ग

बालादक्षिणतः शीघ्रं पलायते<sup>१</sup> निजरक्षया।  
 विचारेवं भुशुंडोपि चोडीनो सोपसव्यतः<sup>२</sup> ॥१०॥  
 भूलोकं च पुनः प्राप तत्र माधवतीं<sup>३</sup> पुरीम्।  
 शक्रेण वीज्यमानं च निजसिंहासने पुरः ॥११॥  
 पश्चादग्रे च रामं हि वीक्ष्य काकोऽतिविस्मितः।  
 उडीनो वामतस्तस्मादिन्द्रस्य<sup>४</sup> पुटभेदनात् ॥१२॥  
 नगरं वीतहोत्रस्य स जगामातिवेगतः।  
 ददृशे तत्र रामं च वह्निना परिसेवितम् ॥१३॥  
 रामं निशम्य काकोऽपि शमनस्य गृहं गतः।  
 अन्तको रामचन्द्रस्य पुरतो भाति दण्डधृक् ॥१४॥  
 एवं वीक्ष्य तदा काको जगाम निरैक्ष्यते<sup>५</sup> क्षयम्।  
 सेव्यमानं<sup>६</sup> तदा तेन निरीक्ष्य<sup>७</sup> रामबालकम् ॥१५॥  
 तत्रापि न स्थितिं चक्रे पाशिनस्तु गृहं गतः।  
 छत्रहस्तेन तेनापि सेव्यमानं च बालकम् ॥१६॥  
 तदाश्चर्यं विलोक्याशु जग्ये प्राभञ्जनं पुरम्।  
 रत्नदण्डप्रकीर्णेन सेव्यमानं तु तेन तम् ॥१७॥  
 क्षपाकरस्य नगरं वायसः प्राप्य<sup>८</sup> वेगतः।  
 भजमानं तु चन्द्रेण रामं दृष्ट्वा पलायितः ॥१८॥  
 शूलिनो नगरं गत्वा रामं दृष्ट्वातिवेगतः।  
 उत्पपात ततश्चोद्धर्वं स्वर्गलोकाय वायसः ॥१९॥  
 तत्र चाग्रे हि गच्छन्तं बालकं ददृशे खगः।  
 सत्यलोकं मनश्चक्रे गन्तुं पक्षी विशेषतः ॥२०॥

- 
१. पलाये-ग
  २. अपसव्यतः-ग
  ३. माधवतीं-ग
  ४. भेदनात्-ग
  ५. निरैक्ष्यता-ग
  ६. सेव्यमानो-क
  ७. निरैक्ष्यता-ग
  ८. प्राप-ग

तत्र गत्वा शिशुं राममजस्य निजसद्वनि।  
 अजाद्यैश्चैव॒ मुनिभिः पादसंवाहनं कृतम्॥२१॥

एवं निरीक्ष्य रामं तु न कुतश्चिदगतिः खगः।  
 भूलोकं पुनरावृत्यै चात्मानं दृश्यते॑ खगः॥२२॥

रामं च पृष्ठसंलग्नं बालरूपं च सुन्दरम्।  
 मतिं चकार रामस्य भयो येनैव जायते॥२३॥

इति ज्ञात्वा निजं रूपं वर्द्धयामास वायसः।  
 स्वयं तु पर्वताकारो दीर्घतुण्डो भयानकः॥२४॥

पक्षौ चाति महादीर्घौ पर्वतस्यैव॑ छादकौ।  
 पादावपि महादीर्घौ तालवृक्षोपमां च सौ॥२५॥

तयोर्मध्ये नखा दीर्घा अड्कुशा इव दन्तिनाम्।  
 तदा रामो महातेजास्ताक्षर्य सम्मार वाहनम्॥२६॥

स्मरणादेव॑ देवस्य सम्प्राप्तो विनतासुतः।  
 खगाधिपं समारूह्यं रामोधावत॑ वायसम्॥२७॥

खगेश्वरोऽपि पक्षेण रामाङ्गप्तो जघान तम्।  
 भुशुणिडस्तु स्वपक्षाभ्यां तताड विनतासुतम्॥२८॥

गरुडेन॑ पुनः काकः पातितः पृथिवीतले।  
 पीडां प्राप्तस्तदा काको जगदाधारवाहनात्॥२९॥

वक्षस्थले तु काकस्य गरुत्मानास्तरोह च।  
 तस्य चोपरि रामो वै विश्वाश्रयो हि पीडति॑॥३०॥

१. अजादिभिश्च-ग
२. पादयोः परिशोलितम्-ग
३. पुनराविश्य
४. ददृश-ग
५. 'पर्वतस्यैव.....दीर्घा' पर्यन्तं पाठः ग-मातृकायां नास्ति।
६. स्मरणाद्राम-ग
७. धावतु-ग
८. गरुडेनापि-ग
९. पीडितः-क

तमुवाचाश रामो वै किंकर्तव्यं त्वया खगः।

सूत उवाच-

भुशुण्डोऽपि महाविष्णुं स्तोतुं रामं प्रचक्रमे॥३१॥

गदगदस्वरया वाचा रामे संयम्य<sup>३</sup> मानसम्।

श्रीभुशुण्डस्वराच-

नमो रामाय महते बालरूपाय ते नमः॥३२॥

अजस्य जनयित्रे च शिवताताय ते नमः।

जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिभ्यः सदाभिन्नाय<sup>३</sup> ते नमः॥३३॥

सर्वध्यक्षाय रामाय क्षेत्रज्ञाय नमो नमः।

योगिष्ठेयाय योगाय योगलभ्याय ते नमः॥३४॥

नमः आद्याय बीजाय शुद्धाय पुरुषाय ते।

नमो विश्वभरायेति विश्वरूपाय ते नमः॥३५॥

केचिद् ध्यायन्ति त्वां राम जगदरूपिणामीश्वरम्।

अपरे पञ्चविंशत्य षड्विंशतिःभुतापरे॥३६॥

ज्योतिरूपमरूपञ्च केचिद् ध्यायन्ति व्यापकम्।

अपरे परमेशां च नित्यलीलादिभिर्युतम्॥३७॥

अपरे तेऽवतारांश्च सदा ध्यायन्ति चेतसा।

केचिद् विरागिणो लोका गृहं त्यक्त्वा वनं गता॥३८॥

तत्र त्वामभिपश्यन्ति ध्यानरूपं हि सर्वथा।

ज्ञानिनश्चापि ज्ञानेन व्यापकं त्वां स्मरन्त्युत॥३९॥

भक्त्या भागवता<sup>४</sup> भक्त्यभिन्नभिन्नं हि चांडतः।

अपरे नियताहाराः स्वनाभिकमले च त्वाम्॥४०॥

लोकपालैर्युतं रामं वायुं जित्वा<sup>५</sup> रहः प्रभो।

ये यथा त्वां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजस्यहो॥४१॥

१. भयाविष्ट-ग
२. संन्यस्य-ग
३. सदामित्राय-ग
४. षड्विंशश्य-ग
५. भगवता-ग
६. पूजितस्त्वं-ग

माया ते प्रबला रामः यथा जातमिदं जगत्।  
 तथा सम्पोहितो जीवो ममाहमिति मन्यते॥४२॥

तत्र ते तु निजस्थानं दिव्यं धाम इति श्रुतम्।  
 यत्र त्वं रमसे नित्यं दिव्यं धाम मनोहरम्॥४३॥

अजायास्तु त्रयः पादाः ध्वंसभावेन वर्जिताः।  
 सङ्क्लोचश्च विकासश्च व्यवचितेषां न जायते॥४४॥

तस्माद्विव्यविभूतिः सा गीयते यं महर्षिभिः<sup>३</sup>।  
 विष्वक्सेनादयो देवा नित्यास्ते पार्षदा विभो॥४५॥

न वै स्पृशन्ति संसारं तत्र चेच्छानुसारतः।  
 अजाया<sup>४</sup>श्चैकपादेन जायते च इदं जगत्॥४६॥

ये भजन्ति सदा त्वां च जगतेषां हि दूरगम्।  
 भो राम तत्र मन्त्रं च ये जपन्ति सदा क्षितौ॥४७॥

जीवन्मुक्तास्तु ते चान्ते लभते परमं पदम्।  
 ध्यानेनापि पदाभ्योर्जं हृदि धारोपयन्ति ये॥४८॥

ते तरन्ति महात्मानः संसारं दुःखसागरम्।  
 अहं तु<sup>५</sup> पादाभ्यां पीडितो हृदये हरे॥४९॥

कथं मुच्येत दुःखाच्च ते पदाक्रमतोऽपि<sup>६</sup> सन्।  
 दर्शनार्थं महिमनस्ते शङ्कुल्याः कर्षणं कृतम्॥५०॥

स्वशक्तिर्दशिता राम त्वया पूर्णेन<sup>७</sup> मे प्रभो।  
 मुच्यतां मुच्यतां राम दीनोऽहं करुणानिधे॥५१॥

अहोभाग्यं हि मे भूरि पादस्पर्शे हि ते किल।

श्री सूत उवाच-

इति विज्ञापितो रामः काकेन हतपाप्मना॥५२॥

१. दिव्यधामनि हरे-ग
२. संकोचो न-ग
३. गीयते परमर्षिभिः-ग
४. अजया-ग
५. तु तव-ग
६. पदाक्रमितोऽपि-ग
७. पूर्वेण-क
८. हतपाप्मना-क

तदा राम प्रसन्नात्मा भुशुण्डं मुमुच प्रभुः।  
 भुशुण्डः पुनरन्त्याय जग्राह चरणौ हरे॥५३॥  
 मस्तके तु करं तस्य रामो दधे दयानिधिः।  
 पुनः पुनस्तु चोत्थाय रामस्य चरणेऽपतत्॥५४॥  
 पुनः पपात ताक्षर्यस्य पादयोः शिरसा खगः।  
 गरुडोऽपि दयायुक्तो भुशुण्डं वाक्यमब्रवीत्॥५५॥  
 उत्तिष्ठेतिष्ठ भो काकः ह्यागमिष्यामि तेऽन्तिकम्।  
 रामतत्त्वविवित्सार्थं प्रष्टुं त्वां च महाखगः॥५६॥  
 दिव्यज्ञानमयाः<sup>३</sup> सर्वे विष्वक्सेनादयो खगः॥  
 हरे रामस्य कृपया मायास्पर्शो न विद्यते॥५७॥  
 'इति लोका वदिष्यन्ति काको ज्ञानी महामतिः।  
 अज्ञानं गरुडस्यैव कृतं येनैव दूरगमम्॥५८॥  
 यशस्तु तव भो काक लोकेषु प्रसरिष्यति।  
 गरुडेन भुशुण्डाद् विज्ञानं प्राप्तं सुदुर्लभम्॥५९॥

भुशुण्डोवाच-

यूयं तु हरिभक्ताश्च रामस्य चरणार्चकाः।  
 यद् भविष्यति मे भाग्ये यदा त्वं ह्यागमिष्यसि॥६०॥  
 कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पादस्पर्शात् काशयप॒।  
 अस्मिन् क्षणे मया॑ देव ज्ञानं प्राप्तं च सुन्दरम्॥६१॥

१. 'काकपदात्-ह्यागमिष्यामि' मध्ये एवं विद्यते ग-मातृकायाम्- 'रामस्य चरणार्चक। त्वया संप्रणितो राम अहं चापि विशेषतः॥ यशसे तव भो काक..'
२. पृष्टं-क
३. द्विव्यज्ञाना वयं-ग
४. द्विजः-ग
५. स्पर्शो न विद्यते नृणाम्-क
६. अस्मात् वाक्यात् पूर्वं ग-मातृकायामेवं विद्यते- 'अज्ञानीव ह्यं काक विपृच्छेहं कदापि त्वां। रामतत्त्वं महाबुद्धे जयत्सु-यशस्ये तव॥'-ग
७. वाक्यं-ग
८. काशयपे- क
९. देव-ग

रामस्य चरणाम्भोजस्पर्शात्तिव महामते।  
 सूत उवाच-  
 विज्ञायैवं स काकस्तु रामं वचनमव्रवीत् ॥६२॥  
 भुशुण्ड उवाच-  
 भो श्रीराम महाभाग भवितं मे देहि निश्चलाम्।  
 अनेन बालरूपेण सदा मे हृदये वस ॥६३॥  
 माया ते प्रबला राम यथा मोहवशोऽभवम्।  
 यथा न मोहयेदेव तथा मां त्वं विधेहि भो ॥६४॥  
 सदा च तव भक्तानां सङ्गमो मे भवेद्यथा।  
 तथा कुरुच्च देवेश नाथस्त्वं मे यतः प्रभो ॥६५॥  
 यत्सुखं साधुसङ्गेषु तत्रस्वर्गे न मानुषे।  
 सत्ये पुनर्भवे नैव तस्मात् सङ्गश्च प्राय्यते ॥६६॥  
 सूत उवाच-

काकेन प्रार्थितो रामस्तमूचे मन्दया गिरा।  
 भक्तस्य मोहितो भक्त्या तथा दीनं विलोक्य च ॥६७॥  
 श्रीरामचन्द्रोवाच-

यथा वदसि भो काक तत्त्यैव भविष्यति।  
 उपदेक्ष्यसि त्वं ज्ञानं गरुडाय महात्मने ॥६८॥  
 मायया तव बन्धो न भविष्यति कदाचनैः।  
 आश्रमे तव माया तु प्रभावं न करिष्यति ॥६९॥  
 हृदये मम रूपं च निवसिष्यति ते सदा।  
 भक्तानां मम सङ्गस्तु भविष्यति न संशयः ॥७०॥  
 कृतं स्तोत्रं पठिष्यन्ति मानवास्ते विचक्षणाः।  
 तेषां वै सकलान् कामान् प्रददामि न संशयः ॥७१॥  
 धनकामो पठेद्यस्तु षण्मासं कृतनिश्चयः।  
 विधिना ब्रह्मचर्येण लभते धनमेव हि ॥७२॥

१. कुरुध्व-ग
२. कथंचन-ग
३. मे-ग

पुत्रार्थीः पठते<sup>१</sup> यस्तु वर्षमेकमनन्यधीः।  
 अवश्यं लभते पुत्रमन्यच्चापि महामते॥७३॥  
 सूत उवाच-

वरं दत्वा तदा रामस्त्रैवन्तर्दधे<sup>२</sup> स्वयम्।  
 विसर्जितस्तु रामेण पक्षिराङ्गपि निर्ययौ॥७४॥  
 भुशुण्डोऽपि निजं स्थानं प्रापद्यत प्रहर्षितः।  
 द्यायमानः सदा रामं बालरूपिणीश्वरम्॥७५॥  
 भुशुण्डश्च शिवश्चापि रामदर्शनलालसौ।  
 पश्यतस्तु सदा रामं ब्रह्मवेषधरौ च तौ॥७६॥  
 बालक्रीडा मया तुभ्यं वर्णिता मुनिसत्तमः।  
 अन्यामपि प्रवक्ष्यामि बालक्रीडां मनोहराम्॥७७॥  
 इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे षडविंशोध्यायः।

□ □

- 
१. पुत्रार्थ हि पठेद्-ग
  २. स्त्रैवान्तर्दधे स्वयं-ग

## सप्तविशंतिः अध्यायः

श्रीसूत उवाच-

कदाचिद् रामचन्द्रस्तुं बालरूपी तु कौतुकी।  
 चकार विविधां क्रीडां मातृणां मोहनाय च॥१॥  
 जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिंगमानो यतस्ततः।  
 मातरः स्पृष्टसंलग्ना: प्रस्त्रवन्त्यो स्तनात् पयः॥२॥  
 धावमानस्तु प्रेष्णा बालरक्षार्थहेतवे।  
 ताम्बूलभक्षणं त्यक्त्वा तथा शय्यां हिरण्यमरीम्॥३॥  
 बालक्रीडाचमत्कारं कुर्वन्त्योपि१ यतस्ततः।  
 लेभिरे परमानन्दं पूर्वैः सुकृतकोटिभिः॥४॥  
 चेटिकास्तु सदा बालान् मातृभिः सहिता मुहुः।  
 ररक्षुः शस्त्रजातिभ्यः पतनाच्चैव वेगतः॥५॥  
 रामचन्द्रं तु कौशल्या चालनं शिक्षते मुहुः।  
 रामस्य दक्षिणं बाहुं पाणिना गृह्ण भामिनी॥६॥  
 मातृपाणिं समालम्ब्य मन्दं मन्दं च चालसः।  
 कारयन्नपुरारावं किङ्किणीनां पदे पदे॥७॥  
 एवं भरतशत्रुघ्नलक्षणादी॑श्च भ्रातरः।  
 लालयन्ति स्म प्रेष्णा वै कौशल्याद्यास्तु मातरः॥८॥  
 कौशल्यापि महाराजी रामञ्चाङ्के निवेश्य च।  
 मुखं संवीक्ष्य रामस्य मुदमाप परं सती॥९॥  
 दन्तपडिक्तं मुखे वीक्ष्य कुन्दमुक्तासमप्रभाम्।  
 बन्धूकसदृशीं जिह्वामोष्टं सिन्दूरसन्निभम्॥१०॥

१. रामचन्द्रोपि-ग

२. पश्यन्तोपि-ग

कपोलौ च महादिव्यौ चन्द्रनीलसमप्रभौ।  
 चिबुकं बालकस्याथ नासिकां शुकनासिकाम्॥११॥  
 तिलकं मृगनाभस्य वीक्ष्य माले मुदान्विता।  
 चापं पञ्चशरस्येव तादृशं भृकुटीद्वयम्॥१२॥  
 आवृत्तमलकैरास्यं ग्रथितैर्मणिमौक्तिकैः।  
 रामस्य तुण्डं जननी निरीक्ष्या-  
 चुचुम्ब ध्रेण्णा किल चाक्षियुगम्।  
 पुनः पुनः सा वदनं विलोक्य,  
 कण्ठे स्वकीये मिलति स्म बालम्॥१३॥  
 श्रीरामचन्द्रस्य निरीक्ष्य शोभां  
 तथा तृणं त्रोटयति स्म माता।  
 मा दृष्टिदोषो मम बालकेऽभू  
 देवं विचारं मनसा चकार॥१४॥  
 कौशल्याभवने राजा स्थितस्तु<sup>१</sup> किल चैकदा।  
 रामं स्वाङ्के निधायाथ लालयामास प्रेमतः॥१५॥  
 भरताम्बा तु तत्राथ भरतेनाजगाम ह।  
 सुमित्रा तत्र पुत्राभ्यां प्राविशद् गजगामिनी॥१६॥  
 अन्याश्च तत्र शतशो राजदाराः समाजगुः।  
 अन्याश्च ज्ञातयः सर्वा दासादास्यो अनेकशः॥१७॥  
 नरेश्वरो महाभागः कौशल्याभवने शुभे।  
 क्रीडायामास बालान् वै परदाह्यस्वरूपिणः॥१८॥  
 रामं कदाचिदुत्थाय भरतं लक्ष्मणं क्वचित्।  
 शत्रुघ्नं च तथा राजा लालयामास क्रोडके॥१९॥  
 तस्मिन् काले तु गन्धवो विश्वावसुरिति श्रुतः<sup>२</sup>।  
 आजगाम निजस्त्रीभिरन्तः पुरं च भूपतेः॥२०॥  
 भूपेनाकारितस्तत्र नान्यथागमनं गृहे।  
 राजानं वर्द्धयित्वा तु तथा राजी अनेकशः॥२१॥

१. मास्थितः-ग

२. श्रुतिः-क

राजा सभाजितः सोऽथ तेनाज्ञपत्स्थितो हि सः।  
 विश्वावसुरुवाच-  
 श्रणुष्व राजशार्दूल वाक्यं नो गुणगौरवात्॥२२॥  
 विश्वरावधनं यस्य तस्माद्विश्वावसुस्त्वहम्।  
 अहं गुणैः स्वकीयैस्तु ससुतं तोषये च त्वाम्॥२३॥  
 इत्युक्त्वा वादयामास मृदङ्गान् मुरजादिकान्।  
 व्यंग्यादिकाश्च सुषिरान् वीणाद्यादर्शिं तान्त्रिकान्॥२४॥  
 तालादिकाङ्गणश्चैव तथा वाद्याननेकेशः।  
 स्वयं तु वादयामास सुस्वरां परिवादिनीम्॥२५॥  
 अप्सरस्तु ननृतः सङ्क्षे तस्य समागताः।  
 नाटकाः तत्र गायन्ति रघ्वादीनां च भूभुजाम्॥२६॥  
 मोहितास्तु तदा सर्वे तासां गानेन ते जनाः।  
 राजा दशरथो राजी दासाः दास्यश्च बालकाः॥२७॥  
 अन्याश्च ज्ञातयः सर्वाः पक्षिणः पशवस्तथा।  
 जङ्गमाजङ्गमाः जाताः॑ जङ्गमोजङ्गमस्तदा॒॥२८॥  
 कर्णपात्रैः स्त्रियः पीत्वा तेषां गीतामृतं तु ता।  
 नाशकं स्मरवेगेन चात्मानं प्रतिगृहणीतुं॥२९॥  
 बालारामादयोप्येवं मोहिताः तस्य गानतः॑।  
 मातुरङ्गात् समुत्थाय गन्धर्वाङ्के समारुहत्॥३०॥  
 गानं त्यक्त्वा तु गन्धर्वो विश्वावसुर्यहातपाः।  
 लालयामास बालाश्च भाग्यं मत्वाधिकं स्वकम्॥३१॥

- 
१. विश्वरावधन-
  २. वीणदिकाश्च-
  ३. तालादिकान् धनाश्चैव-
  ४. सुस्वरं परिवादनम्-
  ५. अप्सरास्तत्र-
  ६. याता-
  ७. जंगमाजंगमा-स्तरा-
  ८. प्येतं-
  ९. भाग्य-

नृपादयस्तु ते सर्वे बालान् वीक्ष्य मुदं ययुः।  
 ऊचुः परस्परं लोकाः गीतमाहात्यपीदृशम्॥३२॥  
 बालानामपि मोहोऽभूदन्येषामपि का कथा।  
 मातरस्तु तथा सर्वाः हस्तान् प्रासार्य चालुवन्॥३३॥  
 अत्रागच्छन्तु हे पुत्राः गन्धवर्द्धाच्च वेगतः।  
 स्तन्यं धवन्तुं भो बालाः विश्वावसुस्तु गच्छतु॥३४॥  
 एवमाकारिताश्चापि न चाजग्मुश्च मातरम्।  
 पुनः पुनस्तुं तस्यैव चाङ्गे लीनास्तु चार्भकाः॥३५॥  
 तदा तु मातरश्चापि विस्मयं जग्मुरुत्सुकाः।  
 राजादशरथस्यापि नराः सर्वे तु भूरिशः॥३६॥

सूत उवाच-

कौशल्या रामजननी<sup>३</sup> सुमित्रा लक्ष्मणप्रसूः।  
 गन्धर्वमूच्यतुः प्रेम्णा बालकानां सुखाय च॥३७॥  
 श्रीकौशल्या सुमित्रा चोचतुः-  
 अत्रैव तिष्ठ गन्धर्व बालकानां सुखाय च<sup>४</sup>।  
 मानितः प्रीतियुक्तैश्च ह्यस्माभिनृपवेशमनि॥३८॥

विश्वावसुरवाच-

देवराजस्य चाग्रे वै गानकर्मसुयोजिताः।  
 आज्ञां विना न तस्यैव तव गेहे वसेमहि॥३९॥  
 तमामन्त्र्य पुनर्देवी ह्यागमिष्यामहे ध्रुवम्।  
 श्रीराजादशरथोवाच-  
 इदानीं गम्यतां देवं तं गत्वा पुनराव्रज।॥४०॥  
 बालकानां सुखार्थं नः शक्रसत्त्वां न निषिध्यति<sup>५</sup>।  
 कैकेयी च तदा श्रुत्वा गन्धर्वगमनं दिवि॥४२॥  
 चुकोप च सदो<sup>६</sup> मध्ये विश्वावसुं जगाद च।  
 बालकान् मोहयित्वा नः कुत्र यास्यसि कैतव॥४२॥

- |    |                      |    |             |
|----|----------------------|----|-------------|
| १. | घघन्तु-ग             | २. | श्च-ग       |
| ३. | जननी तस्य-ग          | ४. | उवाच-क      |
| ५. | गाने वयं सुयोजिताः-ग | ६. | निषिध्यति-ग |
| ७. | सा-ग                 |    |             |

इन्द्रोऽस्माकं गृहे गातुं त्वां निषिध्यति<sup>१</sup> नो कदा।  
 कदाचिच्च मदाक्षिणः निषेधं कुरुते तव॥४३॥

तदा राज्ञो हि बाणीयैः पीडितोधः पतिष्ठति।  
 वाक्यमुक्त्वा तु सा वाला जगदे नृपतिं प्रति॥४४॥

धनुर्बाणं समानीय प्रक्षिप्य नृपतेः पुरः।

श्रीकैकेयी उवाच-

बाणे पत्रं समावेष्य चेन्द्रलोकं च प्रेषय॥४५॥

गन्धर्वश्च<sup>२</sup> यथा तिष्ठेत्तथा कुर्याच्च वृत्रहा।  
 वाक्यं राज्ञः समाश्रुत्य चक्रे च रघूत्तमः॥४६॥

इष्ठौ पत्रं समावध्य उपस्पृश्य जलं शुचिः।  
 चापे बाणं समाधत पठित्वा मंत्रमुत्तमम्॥४७॥

मुमोच बाणं सहसा स्वर्गलोकाय भूमिपः।  
 प्रभावाद् वशिष्ठमन्तस्य क्षणात् स्वर्गं जगाम सः॥४८॥

शक्रस्य च पपाताग्रे<sup>३</sup> सुराणां पश्यतां सताम्।  
 बाणाक्षरं विलोक्याशु विज्ञाय नृपतेरिषुम्॥४९॥

वाच्यामास पत्रं तु बाणादुधृत्य वेगतः।  
 अत्रत्यं किल वृत्तान्तं गन्धर्वार्थेण<sup>४</sup> तु देवराद्॥५०॥

ज्ञात्वा निवेदयामास कैकेय्याः कोपकारणम्।  
 देवेभ्योपजहासाशु<sup>५</sup> वाक्यमूचे त्विदं सुधीः॥५१॥

कदा मया निषेधस्तु गन्धर्वस्य कृतः सुराः।  
 वयं तु<sup>६</sup> तस्य चाज्ञायां सदा वर्तमिहे विभो॥५२॥

- 
१. गन्तु-ग
  २. निषिध्यति-ग
  ३. पात्रं-क
  ४. गन्धर्वोऽत्र-ग
  ५. तद्वसः:-क
  ६. चापपाताग्रे-ग
  ७. गन्धर्वार्थ-ग
  ८. देवेभ्यो विजहासाशु:-ग
  ९. च